अक्टूबर 2015
वार्षिक मूल्य ₹ 150

साधन

संस्थापक : समर्थ गुरु परम संत डा. चतुर्भुज सहाय जी

ॐ

रामाश्रम सत्संग, मथुरा

ॐ

साधन

अक्टूबर-2015

अनुक्रमणिका

ॐ

साधन

वेद-मंत्र

उत स्वया तन्वा संवदे तत् कदानु अन्तर्वरुणे भुवानि।
किम्मे हव्यं अहृणानोजु षेत कदा मुडीकं अभिरव्यम्॥

—ऋ० 7-86-2

अर्थ—वरुण, वरणीय देव! दर्शन दो, अपने अन्दर प्रवेश होने दो। मेरी हव्य को, समर्पण को स्वीकार करो। दयालु देव! द्रवित हो जाओ, ऐसी कृपा करो कि मैं प्रसन्न मन से तुम्हारा दर्शन कर सकूँ।

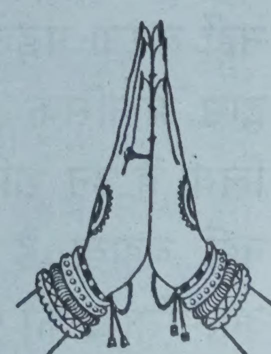
ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

वर्ष : 83 अंक : 03	अक्टूबर-2015	वार्षिक मूल्य : ₹ 150.00 इस अंक का : ₹ 16.00

-: उद्बोधन :-



राम कहो राम कहो, राम कहो बाबरे।
अवसर न चूक भोंदू, पायो भलो दाँव रे॥
जिन तोको तन दीन्हों, ताको न भजन कीन्हों।
जनम सिरानों जात, तेरो लोहे कैसो ताव रे॥
रामजी को नाँव गाव, रामजी को तू रिझाव।
रामजी के चरनकमल, चित्त माहिं लाव रे॥
कहत मलूकदास, छोड़दे तैं झूठी आस।
आनंद-मगन होइके, तैं हरिगुन गाव रे॥



—बाबा मलूकदास जी

अमृत बिन्दु

आत्म-सिद्धि

—परमपूज्य गुरुदेव

शान्ति व आनन्द का सम्बन्ध आत्मा से है इसलिये इसकी प्राप्ति के लिये आत्म-सिद्धि की आवश्यकता होती है। शारीरिक व मानसिक सिद्धियों से मनुष्य मायावी विशेष शक्तियों पर अधिकार कर सकता है, उनके द्वारा मार्ग के अनेक खेल दिखा सकता है, पर आत्म-दर्शन, आत्म-ज्ञान और पूर्ण शान्ति अथवा पूर्ण आनन्द उन्हें नसीब नहीं हो सकता। यदि उन प्राप्त की हुई मानसिक शक्तियों का दुरुपयोग (Misuse) न किया जाय, उन्हें दुनिया के दिखावे में वृथा न बहाया जाय तो वह आत्मसिद्धि की प्राप्ति में सहायक हो सकती हैं, उस मनुष्य को आत्मा के दर्शन करा सकती हैं, उसे अपने सहारे वहाँ तक पहुँचा सकती हैं, परन्तु वह शान्ति और आनन्द नहीं दे सकतीं क्योंकि यह वस्तु आत्मा के पास है मन व शरीर से इनका कोई सम्बन्ध नहीं है।

आत्मसिद्धि के लिये कोई नवीन साधन नहीं करना पड़ता, जिन्होंने मन की एकाग्रता के द्वारा मानसिक शक्तियों को अधिकार में कर लिया है उन शक्तियों को व्यर्थ संसारी खेलों में नहीं बहाया है उनको बिना परिश्रम ही इस आत्मसिद्धि की प्राप्ति हो जाती है और वह मनुष्य आत्म दृष्टि के द्वारा आत्म देश की सैर करने लगता है, वहाँ का आनन्द लूटने लगता है। प्रथम धारणा, ध्यान और समाधि के द्वारा मानसिक शक्तियों को उभारा जाता है फिर आगे उन्हीं के सहारे आत्म-साक्षात्कार किया जाता है। मन की शक्तियों का प्रभाव जब तक नीचे को बहता है वह प्रत्येक व्यक्ति को नीचे ढकेलती रहती है और जीव उसी धक्के से नीचे गिरता जाता है और जब वह शक्तियाँ ऊँचे को चालू हो जाती हैं तो सम्पूर्ण इन्द्रियाँ बुद्धि व अहं को ऊपर उठा ले जाती हैं और आत्मा का दर्शन उसे करा देती हैं। ऊपर जाने में भी मन की सहायता लेनी पड़ती है और नीचे माया के दलदल में गिराने को भी यही मन काम करता है। यह मन शरीर और आत्मा के बीच की एक ऐसी कड़ी है कि जिसके साध लेने पर सभी कुछ हो सकता है। यह ऐसी दुधारी तलवार है जो दोनों ओर काट करती है। जैसे होशियार सिपाही अपनी रक्षा करता हुआ दुश्मन पर उसका वार करता है और अनाड़ी अपने हथियार से खुद ही मारा जाता है उसी तरह मन की शक्तियों पर जो लोग कन्ट्रोल कर लेते हैं उनके लिए यही मन अमृत प्रदान कर मोक्ष देता है और जो उसका ठीक प्रयोग करना नहीं जानते उन्हें यही मन इस मायावी समुद्र में ढकेल देता है।

पहचान

आत्मसिद्धि वाला मनुष्य सिद्धों की तरह करामातें नहीं दिखाता, वह मान-अपमान से नहीं डरता, वह प्रशंसा और धन का भूखा नहीं होता,

निन्दास्तुति में समान रहता है, संसार के सुख-दु:ख, हानि-लाभ उसके लिए एक जैसे होते हैं क्योंकि भगवान की मर्जी में खुश रहता है और संसार में द्रष्टा रह के जीवन व्यतीत करता है। वह खुद शान्त रहता है और दूसरों के तप्त हृदयों को भी शान्ति प्रदान करता रहता है। अनेक मनुष्य उसके सहारे कल्याण के पथ पर चल के निजधाम में जा पहुँचते हैं, आत्म-साक्षात्कार करते हैं। गुरु की मर्जी पर चलने से वासनायें उसके अन्दर नहीं उठतीं, कोई इच्छा उसे किसी काल में नहीं सताती, संसार से उपराम हो जाता है, परन्तु संसारी व्यवहार से उसे घृणा नहीं होती। वह साधारण मनुष्यों की तरह सारे ही व्यवहारी कार्य करता देखा जाता है परन्तु उनमें लिप्त नहीं होता। ऐसा सत् पुरुष काम करता है पर उसमें फंसता नहीं है। संसारी को प्रत्येक वस्तु में उसे अपने प्यारे की झलक दिखाई देती है, उसी परम पुरुष की अनुपम लीला नजर आती है। अपना शरीर, अपना मन व अहंकार एवं अपनी आत्मा भी उसी का एक अंग अनुभव होती है, इसलिए उसे सबसे प्रेम होता है परन्तु प्राणियों से प्रेम व उनकी सेवा करते हुए भी वह अपनी असलियत नहीं भूलता। जीवन का ध्येय अपने भण्डार में लय होना और संसारी बन्धनों से छुटकारा पाना है, इस उद्देश्य को वह कभी दृष्टि से ओझल नहीं होने देता और सदा इसी उद्योग में लगा रहता है। सारे व्यवहार के कार्य करते हुए शान्ति की गोद में खेलना और हर समय चाहे वह हर्ष का हो, चाहे महान् संकट का हो आनन्द में मग्न रहना मालिक की मौन पर चलना उसके जीवन का उद्देश्य बन जाता है। जैसे संसारी लोगों की दृष्टि में परमार्थ का कोई मूल्य नहीं होता-परमार्थ चाहे बिगड़ जाये, पर दुनिया के छोटे से छोटे काम ठीक रहें, उनमें गड़बड़ी न आने पाये वैसे ही इन विवेकी पुरुष के लिए आध्यात्मिक-लाभ मुख्य बन जाता है उसे वह छोड़ना पसन्द नहीं करता। दुनिया के कामों की अधिक परवाह नहीं करता परन्तु उन्हें बिगड़ने भी नहीं देता। व्यवहार-व्यवहार की तरह चले, और मन परमात्मा में रमा रहे, सबसे प्रेम हो और सबसे अलग हो। सबकी यथा योग्य सेवा भी होती जाय और मन में कर्त्तापन का अभिमान न आये, सब कुछ खबर हो मगर उसी के साथ बेखबरी भी रहे। नम्रता और सेवा के भाव हों पर उसके साथ आत्म-गौरव भी हो। सब अपने हों और कोई भी न हो। प्रत्येक वस्तु के, प्रत्येक प्राणी के भिन्न-भिन्न रूप दृष्टिगोचर हों, पर उनमें एक ही तत्व (आत्मा) भरा हुआ जान पड़े इत्यादि। आत्म योगी इस प्रकार के स्वभाव बनाने में उद्योग करता है, और सदा एक रस, एक ही भाव में डूबा रहता है। उस ऐसे मनुष्य के लिए संसार बन्धन का कारण नहीं रहता, वह संसारी होता हुआ, शरीर के सारे धर्म निभाता हुआ भी मोक्ष की गोद में खेलता रहता है। ऐसा मुक्त पुरुष स्वयं भी माया के रस्सों को काट डालता है और दूसरे मनुष्य जो इस जिज्ञासा को लिये हुए उसके समीप पहुँचते हैं, उनसे सहायता पाने की याचना करते हैं उन्हें भी पार लगा देते हैं। ●●

सम्पादकीय

पूर्ण पूजा के तीन चरण होते हैं। कर्म, उपासना और ज्ञान। आप मंदिर गये, भगवान की मूर्ति के सामने बैठे, भगवान की आरती की, जाप किया, यह कर्म है। अर्थात् जब मैं अपनी इन्द्रियों और मन के संयोग से पूजा करता हूँ, वह कर्म हो जाता है। पूजा का दूसरा चरण है उपासना। जहाँ बाह्य इन्द्रियाँ पूज़ा नहीं करतीं तथा जहाँ कार्य अन्तर में होता है वह उपासना हो जाती है। उपासना में हमने भगवान के स्वरूप को अन्तर में रख लिया, विचार करते रहे कि भगवान हमारे समक्ष विराजमान हैं, मैं उनके प्रकाश में लय हो रहा हूँ यह उपासना हुई। उपासना करते हुए हम तीसरे चरण में पहुँच जाते हैं जहाँ ज्ञान उतरता है। ज्ञान एक अवस्था है जहाँ मुझे शांति मिली, आनंद मिला। इन तीनों अवस्थाओं को एक रोज की घटना से समझिये। हमने भोजन किया। पेट भर गया तो रुक गये। खाने को हजम होने दिया। खाना हजम हुआ तो सुख मिला, ताकत मिली। भोजन करना कर्म हो गया। खाने को हजम होने के लिये शान्ति में गये, यह उपासना हो गयी। आनन्द मिला, शक्ति मिली, यह ज्ञान की अवस्था को दर्शाता है।

एक और उदाहरण से समझें। किसान भाई परिश्रम करके खेत जोतते हैं फिर खेत में बीज डालते हैं और खेत को छोड़ देते हैं। बीज खेत में पड़ गया, कुछ समय बाद बीज में अंकुर
निकलता है। पौधा निकला और बड़ा हुआ।
पर फूल-फल आये। फल खाये, मिठास मि
ताकत मिली, आनन्द मिला। खेत जोतना, ब
बोना कर्म हो गया, बीज बोकर किसान ने धैर्य
इन्तजार किया, वह उपासना हो गया। बीज
में जमने के बाद पौधा निकला और बड़ा हु
और बड़ा हुआ फल आये यह ज्ञान हुआ अ
फल खा के जो मिठास मैं लेता हूँ वह ज्ञान प्रा
के बाद की अवस्था है। अतः हम देखते हैं
कर्म, उपासना, ज्ञान और ज्ञान के बाद
अवस्था अलग-अलग नहीं है परन्तु उसी पू
का एक सिलसिला है। जब तक हम इन ती
पूजा के चरणों से नहीं गुजरते हमारी पूजा
नहीं होती। उसका फल हमको नहीं मिलत
किसान ने खेत जोता, उसमें गेहूँ का बीज डाल
शांत हो के इन्तजार करने लगा। उसे नहीं माल
कि कैसा पौधा निकलेगा, कैसा रंग होगा।
जब निकलता है तब उसे मालुम होता है, कि
खेत से गेहूँ का पौधा निकला। ऐसे ही शुरू में
राम का नाम मुख से लेते हैं, आरती करते हैं,
वास्तव में राम क्या है, नहीं जानते? हमने मं
या पूजा स्थान में जाकर राम नाम तो कह दि
और विचार कर लेते हैं कि हमारी पूजा समाप्त
गई। छुट्टी हो गई। लिया गया राम नाम हवा
उड़ गया। हृदय में जमने नहीं दिया इसलिये ल
नहीं मिला। हमें उस राम के नाम को अपने हृ

में धारण करना है। जब धारण करते जायेंगे तो आपमें सहजता से यह ज्ञान आता जायेगा कि ये राम का स्वरूप है, ये राम का गुण है, ये राम का आनंद है। राम अब तक तो मूर्ति में थे लेकिन हृदय में धारण करने के बाद हमें प्रत्यक्ष ज्ञान होता है कि **एक राम दशरथ घर डोले, एक राम घट-घट में बोले, एक राम का सकल पसारा, एक राम इन सबसे न्यारा।** उपासना के बाद यह ज्ञान उतरता है कि वही मूर्ति वाले राम सब में हैं। सब जीव जगत राममय है। इससे और गहरी अवस्था में जाते हैं तो देखते हैं कि यहाँ संसार में जो कुछ भी काम हो रहा है, स्थूल में, सूक्ष्म में, कारण में, वही कर रहा है। जैसा वो चाहता है, वैसा सब हो रहा है। उसकी शक्ति से सूर्य निकलता है, उसकी शक्ति से चंद्रमा निकलता है, उसी की शक्ति से वातावरण बदलता है, ऋतुऐं बदलती हैं, उसी की क्रिया से यहाँ फूल खिलते हैं, फल आते हैं, उसी की क्रिया से सारा काम हो रहा है। और गहराई में जाने पर यह ज्ञान प्राप्त हुआ कि राम इतने ही नहीं, वह सत हैं, चित हैं, आनंद हैं। राम के स्वरूप का ज्ञान होने के पहले मैं जानता था कि मेरा जन्म होगा, मौत होगी, संसार में दुःख है, अशांति है, क्लेश है। जब मैं उस राम में चला गया जो सबसे न्यारा है, तो मैं देखता हूँ न मेरा जन्म हुआ है, न मेरी मौत होगी। न यहाँ दुख है, ना अशांति है, ना क्लेश है केवल पूर्ण आनंद ही आनंद है। आज तक मैं करता था, लेकिन अब मैं देखता हूँ कि जो वह करा रहा है वह मैं कर रहा हूँ। 'मैंने किया' का भान था तो 'मैं इसका कर्त्ता हूँ', 'मैं कर्त्ता हूँ' तो दुःख भोगने वाला भी मैं ही हो जाता हूँ, मैं कर्त्ता नहीं तो दुख भोगने वाला भी नहीं होता। अब राम कराते हैं और मैं कर रहा हूँ। मुझे नहीं मालूम कि कैसा करा रहे हैं। राम के स्वरूप को जानने के बाद मुझे कुछ दुःख नहीं, टेंशन नहीं, अवसाद नहीं, मेरा जीवन सुखमय हो गया। किसी से राग नहीं, किसी से द्वेष नहीं, परमात्मा देने वाला है, इसे भी दे रहा है, मुझे भी दे रहा है, संतोष हो गया, तृप्ति है, हर जगह संतुष्टि है। इस अवस्था से गुजरने के बाद आपके शरीर में आकर्षण बढ़ जायेगा। जहाँ आप बैठ जायेंगे वहाँ शांति बरसने लगेगी। जितने लोग आपके संपर्क में आयेंगे सब शान्त हो जायेंगे क्योंकि आप में राम भर गये, वाणी आपकी नहीं है, वाणी राम की है। आपकी वाणी नहीं सुन रहे हैं, वे राम की वाणी सुन रहे हैं। राम की वाणी में प्रेम है, भक्ति है, आकर्षण है, मधुरता है। मेरी वाणी खत्म हो गई अब राम की वाणी है, सभी सुनना चाहते हैं। यह अवस्था पूर्ण पूजा से ही प्राप्त होती है। संतों का ये प्रयास रहता है कि पूजा के यह तीन पाद–कर्म, उपासना, ज्ञान–एक सहज सिलसिला हो जाये, हर काम पूजा बन जाय। हमारे गुरु महाराज ने ऐसी साधना हमें प्रदान की जिसमें इन तीनों का समावेश है। पानी-पानी हम कहते रहेंगे तो प्यास नहीं जायेगी, हमें तो एक ग्लास पानी पीना पड़ेगा। ऐसे ही राम का नाम कहने मात्र से इंसान को राम के स्वरूप का ज्ञान नहीं मिलेगा, लाभ नहीं मिलेगा। हमें राम को अपने में उतारना होगा। उन्होंने ऐसी एक

साधना प्रदान की जिसके द्वारा बिना किसी प्रयास से कर्म भी होता रहेगा, उपासना भी होती रहेगी, ज्ञान भी प्राप्त हो जायेगा, आपकी पूजा पूर्ण हो जायेगी। जीवन सुखमय हो जायेगा। जैसे आप अस्वस्थ हो जाते हैं डाक्टर के पास जाते हैं। बुखार है, सिर दर्द है, खांसी है। योग्य डाक्टर एक दवा बना देता है, जिसमें बुखार की दवा भी है, दर्द की दवा भी है, खांसी की दवा भी है। एक Mixture बना दिया, इसके पीने से तीनों काम एक साथ हो जाते हैं। ऐसे ही गुरु महाराज की क्रिया भी एक मिक्श्चर है जिसमें कर्म, उपासना, ज्ञान—तीनों ही मिले हैं। इसे ही करने से तीनों क्रियाऐं अपने आप हो जाती हैं। स्वस्थ का अर्थ है स्व-अपने में अस्थ स्थित होना। अर्थात् अपने स्वरूप में स्थित होना। यह साधना आपको स्वस्थ कर देगी। आपको अपने (स्व) में अवस्थित करा देगी। इसे ही योग की पू अवस्था स्वरूप अवस्थान महर्षि पतञ्जलि अपने योग-दर्शन में लिखा है—

तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्॥

—योग दर्शन-

जब चित्त की वृत्तियों का निरोध हो जाता उस समय योग होता है। योग में दृष्टा (आत्मा की अपने स्वरूप में स्थिति हो जाती है। अर्था वह कैवल्य अवस्था को प्राप्त हो जाता है स्वस का सहज अर्थ जहाँ कोई रोग नहीं रहता। अर्था राग, द्वेष, घृणा, मन के रोग, बुद्धि के रोग तथ अहम् के रोग, मैं-मेरा कर्त्तापन आदि जो रोग ल गये थे वे सब गुरु महाराज द्वारा प्रदत्त औष (साधना) से दूर होते गये। सारे रोग निकल ग मैं पूर्ण स्वस्थ जो 'चेतन अमल सहज सुखरासि है लय हो गया। जीवन का श्रेयस प्राप्त हो गया

अमृत वचन

★ प्रसन्नचित्त मनुष्य का मन शान्त है और उसे जल्दी ज्ञान प्राप्त हो जाता है।
★ जो असमर्थ हैं, परन्तु लालसा हरिदर्शन की है, संतों से प्रार्थना करें, वह वहीं पहुँचकर उसे कृता करेंगे।
★ जो दूसरों की कल्याण की बात सोचता है उसका भला पहले ही हो जाता है।
★ पूर्णता और सादगी का अभिन्न साथ है और पूर्णता भी सादगी को पाकर प्रसन्न होती है।
★ शुद्ध जीवन मनुष्य के लिए एक ईश्वरीय पुरस्कार है, जो किसी-किसी को ही प्राप्त होता है।
★ अहंकार जीव और ईश्वर के बीच की एक रेखा है जिसे प्रभु ही खींचते हैं और वही उसे मिटा भी हैं।
★ यह निश्चय है कि मनुष्य दुःखों से नहीं बच सकता, पर दुःखी होने से बच सकता है।
★ सदाचार सभी धनों में उत्तम है, वह सभी विद्याओं में श्रेष्ठ है और वह सभी धर्मों का धर्म है।

—परम भागवत परमसंत पं. मिहीलाल जी

प्रवचन पराग—

योग और उसकी सरल साधना

—परम भागवत परमसंत पं० मिहीलाल जी

आपने दो शब्द अवश्य पढ़े होंगे, एक योग, दूसरा वियोग। योग के अर्थ मिलने के और वियोग के अर्थ अलग होने के हैं। जैसे तुम शरीर से मिलने और अलग होते हो, ऐसे मन से भी किसी से मिलने और अलग होते हो। इससे भी आगे जब जीव आत्मा से अलग होता है उसको वियोग और जीव तथा आत्मा का मिलन योग कहलाता है। अब तुम पहिले यह सोचो कि जीव आत्मा से कैसे अलग हुआ, कब अलग हुआ? इसको तुम हल नहीं कर पाओगे, इसलिए पहिले तुम अब योग की सोचो कि जो हुआ वह तो हो चुका, अब हम आत्मा से मिलें कैसे? और यह भी निश्चय है कि जब तुम्हारा योग ईश्वर से हो जायगा, तो यह भेद भी खुल जायगा कि अलग कैसे हुए। इसलिए प्रथम योग के लिए ही सोचो। ईश्वर से योग हो जाने पर न तो कोई प्रश्न ऐसा रहेगा जिसे तुम हल न कर सको, और न कोई इच्छा ऐसी रहेगी जो तुम्हें चंचल बना सके। क्योंकि एक ईश्वर ही पूर्ण है, जो उसे पा लेते हैं, वह भी पूर्ण ही हो जाते हैं। इसलिए यह आत्म योग मनुष्य के लिए अत्यन्त ही आवश्यक है।

योग के लिए :

योग चाहने वालों को आवश्यक है कि प्रथम ऐसे किसी महापुरुष से मिलें, जिसने उस परम पवित्र आत्मा से अपना मेल कर रक्खा हो, अर्थात् जो आत्मदर्शी हो, तथा आत्म-ज्ञानी हो। केवल पुस्तकें पढ़कर जो इन क्रियाओं को करते हों, सम्भव है वह किसी शारीरिक या मानसिक व्याधियों में फंस जायँ और अकारण ही कष्ट उठाते रहें और अपनी जो यह स्थिति है, उससे भी वंचित हो जायँ क्योंकि आत्म-योग की क्रिया, बुद्धियोग से भी आगे की है। जहाँ से बुद्धियोग समाप्त होता है, वहाँ ही आगे आत्म-योग का प्रवेश द्वार साधक के लिए खोल दिया जाता है। इसीलिए आत्म-योग के अधिकारी वही होंगे जो बुद्धिमान हैं, पवित्र हृदय वाले हैं, और जिन्हें संसार से कुछ उपरामता हो चली है। भगवान ने भी कहा है—

श्रुति विप्रति पन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला।
समाधावचला बुद्धिस्तदा योग मवाप्स्यसि॥

अनेक प्रकारों के सिद्धान्त सुनने से बुद्धि जब विचलित हो जाती है तो उसे प्रथम परमात्मा स्वरूप में अचल और स्थिर करना चाहिए, तभी तुम समत्वरूप योग को प्राप्त कर सकोगे।

अतः इस योग को प्राप्त करने वाले जिज्ञासु को बुद्धि से काम लेना है, विद्या से नहीं। इसीलिए सम्भवतः विद्वान इसे उतनी न पा सकें, बुद्धिवान उनसे पहिले पा जायँ। क्योंकि भूखा जहाँ भोजन की तलाश करता है, वहाँ भरे पेट वाला विषयों की ओर दौड़ने लगता है।

तुम जानते हो कि प्रथम यह शरीर है, उससे आगे इन्द्रियाँ हैं, इन्द्रियों से आगे मन है, मन से परे बुद्धि है और बुद्धि से परे वह आत्मा है। इसलिए इस विद्या के चाहने वाले को शरीर भी स्वच्छ रखना है, इन्द्रियाँ भी पवित्र रखनी हैं, मन भी शान्त रखना है और साथ ही अपनी बुद्धि को भी स्थिर रखना है। तभी वह आत्म-योग का अधिकारी हो सकता है। इसलिए ऐसे पुरुष को अपने आहार-विहार को भी ठीक रखना है। जो पुरुष अपना आहार ठीक रखते हैं, उनका शरीर निरोग, तेजवान, स्फूर्तिवान और कोमल तथा पवित्र हो जाता है। ऐसे पुरुष चाहे किसी भी रंग के हों, उनके अन्दर आत्मा का तेज आ जाता है, उनके दर्शन मात्र से ही ऐसा भास होता है मानो यह कोई दिव्य-पुरुष हैं, अच्छे महात्मा हैं।

भोजन सतोगुणी हो, अपने परिश्रम का हो, परमात्मा को अर्पण करके लिया गया हो, मात्रा में अधिक न हो, दिन में कई बार न लिया गया हो, पवित्र आदमी के हाथ से बनाया गया हो, ईश्वर के ध्यान में खाया गया हो, वही भोजन शुद्ध माना गया है।

फिर आहार के बाद बतलाया गया है न अधिक सोओ, न अधिक जागो, ब्रह्मचर्य के साथ जीवन नियमित रक्खो, भोजन अधिक भी न हो और ऐसा कम भी न हो कि शरीर में निर्बलता आ जाय। विषयों से मन को अलग रक्खो, राग-द्वेष और घृणा का त्याग करो, निश्चय भाव से भगवान का ध्यान करो।

ध्यान के लिये :

शुद्ध भूमि में पवित्र और कोमल आसन पर अपने गुरु को याद करके परमात्मा का ध्यान करो। चित्त एक दम शान्त हो, जैसे वायु रहित स्थान में दीपक की लौ स्थिर रहती है, ऐसी स्थिरता में आने वाला योगी आत्मा को प्राप्त करता है। ऐसा योग सरल नहीं है, कुछ साधना ऐसी भी हैं जिनमें कुछ कठिनाइयाँ नहीं, वह क्रियायें सरल हैं। हर एक आसानी से कर सकता है।

तुम जानते हो, दो तरह के मनुष्य पाये जाते हैं। एक तो वह जो बहुत-सा तप किये हुए हैं, दान दे चुके हैं, तीर्थ और व्रत कर चुके हैं, गृहस्थी त्याग के एकान्त वास कर चुके हैं, उन्हें अपने तप और त्याग का पता है। दूसरे वह मनुष्य हैं जिनसे जीवन में कुछ बन नहीं पाया, वह एकान्त में बैठकर पश्चाताप ही कर रहे हैं कि हे प्रभु, मुझसे कुछ बन नहीं पाया, न मैंने कुछ दान ही कर पाया, न व्रत और न उपवास किये, न बैठकर श्रद्धा से कभी भगवान को याद ही किया, मेरा उद्धार कैसे होगा? वह अन्तर में रोता है, बार-बार प्रभु से क्षमा चाहता और प्रार्थना करता रहता है। क्या तुम जानते हो, अपराध किसके क्षमा होंगे? किसका हृदय पवित्र होगा? होगा उसका जो रातों रात रोता और अन्तर में प्रार्थना करता रहता है। एक ही चीज तो है जो निकाल देनी है, वह है, हमारे अन्तर का अहंकार। इसे कैसे भी निकालो। चाहे अनेक तप और ज्ञान द्वारा निकालो, चाहे प्रभु से प्रार्थना और उनके सहारे आँसुओं द्वारा निकालो।

एक बहुत बड़े सन्त का कहना है कि मैंने

बड़े-बड़े तप किये, बड़े-बड़े दान और यज्ञ किये, परन्तु मन की शुद्धि ऐसी नहीं हो पायी जैसी कि एक सन्त की शरण में जाने में कुछ ही काल में और इसी जीवन में हो गई।

भक्त वायजीद बोस्तानी के दिल में आया कि हज करने जाऊँ और चल दिये। आधी दूर से भी अधिक पहुँच चुके थे, कि उधर से एक फकीर साहब आये, पूछा—तू कहाँ जा रहा है? यह बोले—मक्का शरीफ हज़ के लिए। वह बोले—अरे, तेरा खुदा तो तेरे घर में ही बैठा हुआ है, तुझे हज जाने की क्या जरूरत, पहिले उनकी खिदमत कर, वह खुश हो जायँ तो खुदा तो और भी ज्यादा खुश होगा। वह खुदा थी, उनकी बहुत ही खुदा परस्त 'माँ'। वह एक अच्छी महात्मा थीं। बस, यह सुनते ही लौट पड़े और अपनी माँ की सेवा में लग गये।

क्या ऐसा भटकता हुआ मन कभी शान्त होगा? कभी जान पावेगा कि परमात्मा कैसा है और कहाँ रहता है। कभी उसकी कृपा का अनुभव कर सकेगा कि वह दया कैसी होती है? यह सब होगा किसी सन्त सद्गुरु के चरणों में जाने से, जो वास्तव में देहधारी ईश्वर हैं।

एक भक्त ने भगवान से पूछा भी था कि प्रभो! जो अनन्य प्रेमी भक्तजन हर प्रकार से आपकी सगुण रूप की उपासना करते हैं और आप ही की संगत करते हैं, वह श्रेष्ठ हैं, या जो अविनाशी सच्चिदानन्द निराकार परमेश्वर की उपासना करते हैं, वह उत्तम हैं?

भगवान ने कहा—

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः॥

गीता॥१२॥२॥

मेरे में मन को एकाग्र करके निरन्तर मेरे भजन, ध्यान में लगे हुए, जो भक्तजन अतिशय श्रेष्ठ श्रद्धा से युक्त, मुझ सगुण रूप परमेश्वर को भजते हैं, वे मेरे को योगियों में भी अति उत्तम योगी मान्य हैं। इसीलिए सबसे सरल साधना यदि कोई है, तो एक यही है कि अपने को किसी भक्त को सौंपो, किसी सद्गुरु के हवाले करो। तभी तो तुम अपने अनेक जन्मों के उन मल, विक्षेप और आवरण को धो सकोगे, जो अनजाने ही हमारे जीवन में अपना-अपना घर कर चुके हैं। तुम जानते हो वह बुझे हुए दीपक, जिनमें तेल भी है और बत्ती भी, बिना किसी प्रज्वलित दीपक के मिले ही तो अन्धे (बिना प्रकाश) पड़े हुए हैं।

साधक! क्या तुमने भगवान की वह वाणी नहीं पढ़ी कि—"तुम प्रथम सब कुछ छोड़ करके मेरी शरण आ जा, मैं तुझको सम्पूर्ण पापों से मुक्त कर दूँगा।" कितना महत्व है, इस वाणी का। हाँ, यह तो माना कि ऐसे गुरु और ऐसे महान् सन्त कभी-कभी ही जीवन में दर्शन देते हैं। परन्तु साथ ही यह भी निश्चय है कि जब तुम अपने अन्तर से पुकारोगे, बार-बार प्रार्थना करोगे तो वह हर युग में दर्शन देंगे और तुम्हें इन दुःखों से पार कर देंगे। तुम जानते हो मनुष्य को पानी की बहुत आवश्यकता है, उसके लिए प्रभु ने समुद्र बनाये हैं, नदियाँ बहाई हैं, मेघ बनाये हैं, पृथ्वी में

भी जल भर दिया है। पानी से भी आवश्यक वायु है, इसलिए उन्होंने तुम्हारे आस-पास चारों ओर वायु ही भर रखी है। उसकी दया को कैसे समझ पाओगे?

निश्चय जानो मनुष्य किसी भी रूप में एक प्रेम चाहता है। पुत्र में, पिता में, भाई में, बहिन में, मित्र में, परिवार में, सबमें वह प्रेम ही तो ढूँढ़ता है। परन्तु पूरा प्रेम उसे मिल नहीं पाता। हाँ, यदि उन्हें सच्चा प्रेम मिलेगा तो किसी सन्त में ही मिलेगा, क्योंकि सन्त प्रेम के ही अवतार होते हैं, उनके व्यवहार और उनके स्नेह में प्रेम होता है। यहाँ तक कि उनके दर्शन में प्रेम का ही दर्शन होता है। जिस पर उनके प्रेम की एक दृष्टि भी पड़ जाती है, फिर संसार में उसको अपने लिए कोई वस्तु शेष नहीं रह जाती। इसलिए सबसे यदि योग की सरल साधना है तो वह है प्रेम साधना, जो सन्तों से ही प्राप्त हो पाती है।

अतः जो साधक ऐसे महान गुरुओं के प्रेम में अपने को भूल जाते हैं वही तो उस परम तत्व को प्राप्त कर जाते हैं, जिसे ऋषि-मुनि करोड़ों उपायों से भी नहीं पा सकते।

कहते हैं, एक महान दरिद्री भक्त, जिसे खाने को अन्न नहीं, शरीर पर वस्त्र नहीं, बहुत ही पढ़ा लिखा, अच्छे घर का विद्यार्थी, गुरु ने माँ के मन्दिर में भेजा—"जा जा आज माँ मन्दिर में आई है, माँग ले धन, माँग ले यश, माँग ले विद्या।" मन्दिर गया, देखा माँ प्रसन्न मुद्रा में कह रही हैं—"बोल क्या चाहिये।" वह कहता है—"केवल आपके चरणों का प्रेम।" प्रेम से उसे सराबोर कर दिया। उसे संसार दिया, पूर्ण परमार्थ दिया। सब कुछ ही दिया। क्या गुरु के मिल जाने पर भी कुछ शेष रह सकता है? इसलिए वे पुरुष धन्य हैं जिन्होंने गुरु प्राप्त कर लिया है और उन पर पूर्ण श्रद्धा कर साधना में लगे हुए हैं। उन पर कृपा होगी, और एक दिन अपनी साधना में पूर्ण सफलता प्राप्त कर कृत-कृत्य हो जावेंगे। ●●

श्रेय-मार्ग

श्रेय मार्ग क्या है? इसका निचोड़ यह है कि जो बात व मार्ग शरीर (नाशवान) को भाए वह न अपनाकर जो बात व मार्ग आत्मा (अमर) के कल्याण का हो, उसी को ग्रहण करना चाहिए। अतएव निम्न को अपनाना कल्याणकारी होगा—

(1) अपने स्थूल शरीर को स्वस्थ व ठीक रखना।

(2) शुद्ध व पवित्र कमाई से स्वयं व आश्रित लोगों का पालन-पोषण करना।

(3) अपने आचरण पर हमेशा निगाह रखें। चरित्र-निर्माण की ओर हमेशा सजग रहें।

(4) अगर पूर्ण गुरु नहीं मिला तो मनुष्य जीवन पाना व्यर्थ गया और अगर हम अच्छे शिष्य न बन सके तो भी मनुष्य जीवन व्यर्थ गया।

—परमसंत श्री डा० बृजेन्द्र कुमार जी

सुधा-सार :-

आत्मानन्द की प्राप्ति हेतु

—प्रेम मूर्ति परम संत श्री डा० नरेन्द्र कुमार जी

बात यह है कि जब तक हम स्थिर मन से कोई साधना नहीं करते तब तक उसका फल नहीं मिलता। हम लोग साधना तो अवश्य करते हैं, मन्दिर जाते हैं, कीर्तन करते हैं, गीता व रामायण आदि का पाठ करते हैं, लेकिन हमारा मन इधर-उधर घूमता रहता है। स्थिर मन और निष्काम भाव से जो पूजा होती है वही हमको ईश्वर की तरफ ले जाती है।

हम सब जानते हैं कि असुर भी साधना करते थे। परन्तु निष्काम भाव से साधना न करने के कारण उन्हें वे शक्तियाँ प्राप्त हुईं जो मन को स्थिर करने से प्राप्त होती हैं। इसी तरह देवता भी साधना करते थे। उनकी साधना भी निष्काम भाव से नहीं थीं। इसलिए उनको भी वे ही शक्तियाँ और देवयोनि मिली जो सकाम भक्ति से मिलती हैं। चूंकि दोनों की साधनायें निष्काम भाव से नहीं थीं, इसलिए उन्हें शक्तियाँ तो प्राप्त हुईं किन्तु ब्रह्मज्ञान प्राप्त नहीं हुआ।

वस्तुतः ब्रह्मज्ञान या आत्मानन्द न तो केवल मन स्थिर करने से प्राप्त होता है और न सकाम भाव से भक्ति करने से। यह तो केवल निष्काम भाव से मन स्थिर करने से ही प्राप्त होता है। इसलिए जितनी भी साधनायें ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने की हैं वे इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए हैं कि निष्काम भाव से हमारा मन स्थिर और शान्त हो जाय। क्योंकि तभी भगवान का ज्ञान या ब्रह्मज्ञान हमारे अन्तर में उतरना प्रारम्भ होगा।

किन्तु मन को स्थिर और निष्काम बनाना बड़ा ही मुश्किल कार्य है। अर्जुन ने गीता का उपदेश सुनने के बाद भगवान कृष्ण से कहा कि भगवन् मैं बहुत कोशिश करता हूँ कि मेरा मन स्थिर होकर समभाव में आ जाय, परन्तु वह तो ऐसा भागता हैजैसे हजारों घोड़ों का बल उसमें आ गया हो। तब भगवान् कृष्ण ने अर्जुन से कहा कि मन को वश में करने के लिए ध्यान और वैराग्य दोनों जरूरी हैं। क्योंकि ध्यान से मन स्थिर होता है और वैराग्य से मन निष्काम भाव प्राप्त करता है।

इसलिए गुरु महाराज ने हमारे यहाँ की साधना-पद्धति में दो बातें बताईं। एक तो अभ्यास (ध्यान) की क्रिया सुबह व शाम बीस-पच्चीस मिनट करने के लिए कहा। दूसरा उन्होंने कहा कि इस संसार में मेहमान बनकर रहो। संसार से 'मैं और मेरा का जो सम्बन्ध है उसको 'तू और तेरा' में बदल दो। इसी को वैराग्य कहते हैं। इसको जीवन में लाने के लिए जो आज्ञा उन्होंने दी थी। वह यह थी कि हमसे सम्बन्ध बनाये रखो। हमें चाहे गुरु के रूप में,

चाहे पिता के रूप में, चाहे भाई के रूप में, चाहे सखा के रूप में, किसी भी तरह का सम्बन्ध हमसे बनाये रखो। क्योंकि जिससे हम सम्बन्ध बाँधते हैं उससे हमारा प्रेम होता है और जब प्रेम होता है तब ही हम अपनी वस्तु उसको देते हैं।

सच बात तो यह है कि जिससे हमारा सबसे अधिक प्रेम होता है उसी को हम अपनी वस्तु देते हैं। इसलिए इस संसार में जो मैं-मेरे का सम्बन्ध है उसको अपने गुरु के साथ जोड़ने के लिए गुरु से असीमित प्रेम होना चाहिए। अतः साधक के लिए गुरु से सम्बन्ध बनाना तथा उनको याद करते रहना परम आवश्यक है। क्योंकि जितना हम अपने गुरु को याद करेंगे उतना ही उनसे हमारा प्रेम बढ़ेगा।

साधना के सम्बन्ध में दूसरी बात समझने की यह है कि हमारी साधना उपासना की क्रिया है। इस साधना-प्रणाली को दृष्टायोग भी कहते हैं। साधक केवल यह देखता है कि गुरु की शक्ति या प्रकाश उसके अन्दर आ रहा है, उसका रोम-रोम उस प्रकाश से भरता जा रहा है और वह शान्त होता जा रहा है।

प्रारम्भ में इस क्रिया में जब मन शान्त हो है तो साधक को आनन्द आता है। इसके ब साधना की क्रिया हमें निष्कामता की तरफ जाती है। हमारे सूक्ष्म शरीर में जो संस्कार बने हैं वे विचारों के रूप में धीरे-धीरे निकल प्रारम्भ होते हैं और हमें ऐसा लगता है जैसी स्व अवस्था में मन की चंचल स्थिति होती संस्कारों की सफाई द्वारा ही हम निष्कामता तरफ जा सकते हैं। इसलिए जब तक मन पू निष्काम नहीं होगा यह कार्य समाप्त नहीं होग जिस दिन मन पूर्ण निष्काम हो जायगा, य प्रक्रिया भी समाप्त हो जायेगी। और मन स्थि और शान्त हो जायेगा।

अतः हमारा उद्देश्य भी यही होना चाहिए कि संसार के साथ ''मैं और मेरे'' के सम्बन्ध क ''तू और तेरा'' में बदलकर अपने मन को स्थि और निष्काम बना लें। तभी साधना द्वारा ह अपने लक्ष्य पर पहुँच सकते हैं, ब्रह्मज्ञान प्रा कर सकते हैं। ●

समर्पण का सत्य

टूण्ड

पुत्री आशीर्वाद 21.5.7

पत्र मिला। जब हम किसी की नाव में बैठ गये हैं, तो कुछ सोचिए, अच्छे बुरे विचार भी ल रहिये, परन्तु नाव वाला तो पार करेगा ही। हमारी कल्पनायें उठेंगी जरूर, वह प्रभु दया करेंगे। जी क्या करे। वह तो वही सोचेगा जो उसने किया है या करना चाहता है, परन्तु यदि जीवन में एक ब भी उनको सौंप दिया है तो फिर यह लाज उन्हीं के हाथ है।

हस्ताक्षर

परम भागवत परम संत प.पू. पंडित

'तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु'

—श्रीयुत् प्रभुदयाल शर्मा जी

भक्त भगवान् से प्रार्थना करता है—हे परमात्मन्! मेरा मन शुभ संकल्प वाला हो एवं अशुभ संकल्पों से दूर रहे। मन की दशा के विषय में अथर्ववेद में बड़ा ही सुन्दर एवं सटीक वर्णन आया है—

ओम् यज्जाग्रतो दूरमुदेति
देवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरं गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं
तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु।

हे परमात्मन्! जाग्रतावस्था में दूर देशों में भ्रमण करने वाला, सुषुप्ति में निज स्थान में बैठने वाला, बाहर घूमने की जिसमें अद्‌भुत शक्ति है तथा जो ज्योतियों में एक ज्योति है, ऐसा मेरा मन शुभ संकल्प वाला बने। आगे पुनः ऋषि मन की शक्ति के विषय में वर्णन् करते हैं—

'ओम् सुषारथिरश्चानिव यन्मनुष्यान्ने नीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव।
हृत्प्रतिष्ठं यद्‌जिरंजविष्ठं तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु।'

अर्थात् सारथी जिस प्रकार घोड़ों को जिधर चाहता है ले जाता है वैसे ही यह मन इन्द्रियों को विषयों में धकेलता रहता है। जो अत्यन्त वेगवान् है, जो हृदय में गुप्त रूप से निवास करता है। कभी बूढ़ा नहीं होता वह मेरा मन शुभ संकल्प वाला बने।

मानव शरीर जो हमें परमात्मा की असीम कृपा से प्राप्त हुआ है यह एक मंदिर ही है, इसमें आत्मा रूप में वह परमात्मा विराजमान है। साथ ही इस शरीर में पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ तथा मन, बुद्धि, अहंकार आदि को समाहित इसीलिए किया है कि यह जीव इस सर्वांग सुन्दर शरीर के द्वारा उस परमात्म तत्त्व को प्राप्त कर पाये, प्रकृति के इस आकर्षण में जीव अपने उस लक्ष्य को भूलकर भटकने लग जाता है और प्रकृति के इस चकाचौंध में वह प्रकृति का ही होकर रह जाता है। भगवान् स्वयं यह कहते हैं कि इस शरीर में यह सनातन जीवात्मा मेरा ही अंश है और वही प्रकृति में स्थित मन और पाँचों इन्द्रियों को आकर्षण करता है, इस प्रकार वह परमात्मा का अंश इस जीव संज्ञा को प्राप्त हो गया, अब न इस माया (प्रकृति) को जान पा रहा है जिसके कारण वह जीव बन के रह गया और न उस परमात्मा को ही जान पा रहा है जिसका वह स्वयं अंश है, वह अपने को ही भूल बैठा है।

'माया ईस न आपु कहुँ जान कहिअ सो जीव'

इस प्रकार इस जीव संज्ञा को प्राप्त वह परमात्मा का ही अंश भूल गया कि इस मनुष्य जीवन का लक्ष्य क्या है? मैं कौन हूँ, मेरा क्या कर्त्तव्य है, मेरा अस्तित्व क्या है? क्या मैं वह हूँ जिसे शरीर से पहचाना जाता है और जिसे किसी

एक नाम से सम्बोधित किया जाता है अथवा पुकारा जाता है अथवा क्या मैं वह हूँ जो शरीर धारण करने से पहले भी था तथा शरीर के छूटने के पश्चात भी रहेगा? या मेरा अस्तित्व इनसे भी परे और ही कुछ है।

वस्तुत: जब तक इन प्रश्नों का संतोषजनक उत्तर नहीं मिल जाता कि हम कौन हैं? हमारा अस्तित्व क्या है, हमें यह मनुष्य शरीर किस उद्देश्य की पूर्ति के लिये मिला है? तब तक हम जीते भर हैं और वह वास्तव में निरर्थक है, महापुरुष ही इस रहस्य को बताते हैं कि हमारा वास्तविक स्वरूप आत्मा है, शुद्ध चेतना है, हम न तो शरीर हैं और न मन, न इन्द्रियाँ बुद्धि अहंकार हैं, अज्ञानता में तथा अपने स्वरूप की विस्मृति होने के कारण हम शरीर, मन, बुद्धि, अहं को ही अपना स्वरूप मानकर इस असार संसार में उलझ जाते हैं और संसार से बँध जाते हैं– '**बँध्यो कीर मरकट की नाईं**' अवस्था हो जाती है।

मनुष्य के दो रूप हैं-एक जाना हुआ और दूसरा वह है जो अभी तक अजाना ही है जिसे मनुष्य जानता ही नहीं है। इस विषय में एक दार्शनिक एलेक्सिस कैरल अपनी शोध पुस्तक (Man the unknown) 'अजाना आदमी' में लिखते हैं ज्ञात स्वरूप तो वह है कि वह कितना लम्बा है, रंग रूप कैसा है आदि? जो शरीर तक ही सीमित है पर यह तो बहुत ही अल्प है, जब कि अजाना (अज्ञात) रूप तो बहुत विस्तृत है, विशद है, आश्चर्यकारी है। इस अज्ञात रूप को जानने की क्रिया ही जीवन प्रक्रिया है, जानना चाहि स्वयं को पर वह दूसरों को जानने में लग एक बड़े अच्छे विचारक मौ० रूम लिखते 'मैं कौन हूँ, कौन नहीं इसी को जानने में बहु चीजें जान ली हैं और वह कौन है, कौन इसको जानने में बहुत सी चीजें मैंने खो दी एक शायर के बोल के संकेत यही तो हैं-

बाहमा ज़ौक-ए आवागही हाय रे पस्तीए ब
सारे जहाँ का जायज़ा अपने जहाँ से बेख

परम भागवत पण्डित जी महाराज अमोघ वाणी देखें 'यह शरीर तो ईश्वर के म का दरवाजा है, बिना इस शरीर में आये ईश्वर से नहीं मिल सकता जिसका वह अंश मनुष्य का कर्त्तव्य यही है कि ऐसा शरीर प यह न भूल जाय कि परमात्मा से मिलना है। ईश्वर से निकलकर प्रथम इस मनुष्य शरी आता है और उसी में होकर नीचे की अ योनियों में कर्मवश भ्रमण करता रहता है, जब वह पुन: अपने स्वरूप के लिए प्र करता है तो प्रभु कृपा करके उसे मानव शरीर हैं और उसे प्राप्त करके पुन: उस परमात्मा प्राप्त कर जाता है–

कबहुँक करि करुना नर देही।
देत ईस बिनु हेतु सनेही॥

अब यह मन शुभ संकल्प वाला कैसे क्या उपाय है? उसी के लिये कठोपनिष भगवान यम स्वयं अपने परमप्रिय शिष्य नचि को सावधान करते हुये उस परमात्मा को प्र करने का उपाय बतलाते हुये प्रेरित करते हैं–

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्नि बोधत।

कठ० १/३/१४

क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया

दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति॥

हे मनुष्यो! उठो जागो, सावधान हो जाओ और श्रेष्ठ महापुरुषों को पाकर उनके समीप जाकर उनके द्वारा उस परब्रह्म परमेश्वर को जान लो क्योंकि त्रिकालज्ञ ज्ञानी पुरुष उस तत्त्वज्ञान के मार्ग को छुरे की तीक्ष्ण की हुई दुस्तर धार के सदृश अत्यन्त कठिन बतलाते हैं। ऐसे दुस्तर मार्ग से सुगमता पूर्वक पार होने का सरल उपाय वे अनुभवी महापुरुष ही बता सकते हैं जो स्वयं इसे पार कर चुके हैं, संत तुलसीदास जी की वाणी के संकेत यही हैं–

सुगम उपाय पाइबे केरे,

नर हतभाग्य देहिं भटभेरे॥

रा.च.मा. ७/१२

इस मृण्मय (सृष्टि के समस्त जड़ चेतन) में चैतन्य रूपी चिन्मय का ही वास है। जिस प्रकार नर्त्तक में नृत्य समाया हुआ होता है, उसी प्रकार इस सृष्टि में वह सृष्टा समाया हुआ है। समस्त जड़ चेतन में उसी का वास है। जिस प्रकार गतिमान पहिया अपरिवर्तनशील कील पर ठहरा हुआ है, उसी प्रकार सारे परिवर्तन मृण्मय रूपी परिधि पर होते हैं जबकि भीतर मौजूद चिन्मय सदा स्थिर रहता है। परमात्मा को हमें अन्यत्र खोजना है यह धारणा ही भ्रांत है। परमात्मा तो हम सबके भीतर मौजूद है। हमें केवल बाहर जाती चेतना की दिशा को परिवर्तित करके भीतर करनी होगी तभी हमें उस परमतत्त्व की प्राप्ति हो पायेगी। परम समर्थ गुरु महाराज की वाणी में हम सब यही संकेत देखते हैं ईश्वर प्रेम चाहता है, प्रेम की नाड़ी मनुष्य के अन्दर दबी पड़ी हुई है। वह कहता है-प्रेम करो, मुझसे प्रेम करो, अपने से प्रेम करो पर हम हैं अपने दुश्मन आप ही बने हुये हैं जिन्हें संसार के प्राणियों से प्रेम नहीं, जिन्हें भगवान् की दी हुई वस्तुओं से प्रेम नहीं, ऐसे कठोर हृदय ईश्वर दर्शन सौ जनम में भी नहीं पा सकते? एक गुरु भक्त अपने गुरु से यही प्रार्थना करते हैं-

'हृदय कठोर नयन गर्वीले इनको कोमल कीजै।
श्री गुरुदेव चरण रज दीजै।'

ऐसी प्रार्थनाओं से गुरु प्रसन्न होते हैं कृपा करते हैं। संतों का स्वभाव ही परोपकारमय होता है।

'पर उपकार बचन मन काया।
संत सहज सुभाउ खगराया॥
संत सहहिं दुख परहित लागी।
पर दुख हेतु असंत अभागी॥'

ऐसे संतों का सद्व्यवहार ही उन्हें सबका प्रिय बना देता है। महान् संत विदुर जी की वाणी को देखें–

'न तत्परस्य संदध्यात् प्रतिकूलं यदात्मना'

अर्थात् जो व्यवहार अपने साथ किये जाने पर प्रतिकूल मालूम दे उसे दूसरों के साथ कभी नहीं करना चाहिये। वस्तुतः आनन्द की प्राप्ति का रहस्य यह है कि हम दूसरों की आत्मा को सुखी बनायें। मनुष्य जितनी आत्माओं को सुखी

बनाता है—वह आनन्दित होता है कारण कि हर हृदय की शान्ति प्रसन्नता उसके हृदय में भरती जाती है। संत महापुरुषों का व्यवहार एवं सब के प्रति प्रेम ऐसा ही होता है—

'जिह्वाया अग्रे मधु मे जिह्वा मूले मधूलकम्।
ममेदह क्रतावसो मम चित्तमुपायसि॥'

ऐसे संत यही प्रार्थना करते हैं कि 'मेरी जिह्वा के अग्रभाग में माधुर्य हो, मेरी जिह्वा के मूल में मधु हो (मधुरता), मेरे कर्म में माधुर्य का निवास हो और ये माधुर्य मेरे हृदय तक पहुँचे'। परम भागवत पण्डित जी महाराज कहा करते थे कि सबसे मीठा बोलना और सबका भला चाहना ही संतों का स्वभाव होता है, उनके हृदय में सभी के लिये शुभ संकल्प ओत-प्रोत रहते हैं।

हे गुरो! प्रार्थना है कि हमारे मन वचन कर्म में सभी के लिये शुभ संकल्प, शुभ भावनायें हों।

आलोक किरणें

- सन्तों के यहाँ कर्मी-कुकर्मी और जात-पाँत का झगड़ा नहीं होता, वह प्रेमी हृदय देखते हैं, जिसमें जिज्ञासा पाते हैं, जिनके अन्दर भक्ति का संस्कार बीज रूप से देखते हैं उसे ही पसन्द करते हैं। उनका द्वार ऐसों के लिए सदा खुला रहता है। अब आगे मनुष्य की अपनी इच्छा रही कि वह उससे फायदा उठाये, चाहे न उठाये।
- व्यवहार के बदलने और आदतों के सम्हालने से भी बहुत कुछ खुशी का हिस्सा मिलता है। क्रोधी, लालची, द्वेषी, अहंकारी सदा दु:खी रहता है, उसके लिए आराम की नींद ईश्वर ने नहीं दी। चैन से वही सो पाता है जो अपने कर्त्तव्य को पहचानता है, दूसरों की इज्जत करता है, दूसरों को प्रेम करता है, वही सुखी रहता है।
- जिस मनुष्य की सारी इच्छायें पूरी हो रही हों और वह खूब फल-फूल रहा हो तो समझ लो कि ईश्वर ने उसे छुट्टी दे रक्खी है और उसकी ओर से आँख मींच रक्खी हैं, क्योंकि वह जिस पर कृपा करता है जिसका भला करना चाहता है उसकी इच्छायें पूरी नहीं होने देता और कष्ट में ही रखता है।
- भिक्षुक और छोटा बन के मालिक के दरबार में जाओ। बड़ों की वहाँ गुजर नहीं है। उसके द्वार की खिड़की बहुत तंग हैं, जिसमें बड़ा निकल नहीं पाता।

—परमपूज्य गुरुदेव

श्री गुरु–महिमा

—श्री अमरदत्त जोशी

गर्भ पले शिशु मातु के, मोद अंक पय पान।
ऐसे गुरु सद्शिष्य को, पाल पोस दें ज्ञान ॥1 ॥
कब से टेरत हूँ प्रभु, विनय सुनो हे नाथ।
टिका रहूँ दरबार में, गुरु अनाथ के नाथ ॥2 ॥
भक्तवत्सल गुरु ना गिनें, भेद उच्च और नीच।
पारस फर्क न मानता, लौह–लौह के बीच ॥3 ॥
सबका है, सबके लिए, खुला है गुरु दरबार।
धनी–निर्धन दलित को, दें भक्ति प्रेम इक सार ॥4 ॥
नदी करावत पार है, केवट नाव चढ़ाय।
भव सरिता से पार हों, सद्गुरु नौका पाय ॥5 ॥
गुरु मूरत हिरदै बसे, पर सूरत ना भाय।
खाली सदन न जान के, आय मुसाफिर जाय ॥6 ॥
करि प्रपंच बहुजन थके, जल मथ घृत नहीं होत।
भव जल पार न पा सके, बिनु गुरु–कृपा के पोत ॥7 ॥
पहले सद्गुरु से मिलें, श्रद्धा और विश्वास।
पीछे सद्गुरु में मिलें, प्रेम–स्वरूप विश्वास ॥8 ॥
जो भी था, है, और मिले, गुरु अमानत मान।
जहाँ रखे, जैसे रखे, मालिक मरजी जान ॥9 ॥
औरौं से नहीं मांगिए, ईश्वर से भी नांहि।
पड़े गुरु से मांगना, प्रेम भक्ति बस चांहि ॥10 ॥
निर्मल सरल ही पा सके, गुरु कृपा और प्रेम।
कुटिल कपट छल छिद्र से, नहिं पावे कोई क्षेम ॥11 ॥
शरण गही गुरु आपकी, प्यार मिले दुत्कार।
पार करें या न करें, तब इच्छा स्वीकार ॥12 ॥

परम पूज्य बड़ी बुआजी के अवतरण दिवस 24 अक्टूबर पर विशेष

—श्रीयुत् अमित कुमार

शास्त्रों में आया है कि नीचे मूलाधार से लेकर ऊपर सहस्त्रार तक जितने चक्र हैं उनमें से अनाहद चक्र हृदय का चक्र है। ये "माँ" का स्थान है। आत्मा का भी यही स्थान है। प्रेम यहीं फलीभूत होता है। माँ का यह चक्र स्वतः ही जाग्रत रहता है, यही गुरु का "माँ" रूप है। गुरु स्त्रीलिंग-पुल्लिंग नहीं होता, जैसे माँ के हृदय चक्र के तार अपने पुत्र से जुड़े रहते हैं वैसे ही जब गुरु शिष्य को पुत्रवत मान लेता है तो उससे उनके तार ऐसे जुड़ जाते हैं कि एक संदेश भी यदि उन तक आ गया कि मेरा पुत्र तकलीफ में है तो फिर उनकी कृपा रुकती नहीं है। तीर की तरह सहायता उस तक पहुँचती है। इसी प्रेमचक्र के स्थान पर गुरु महाराज ने अपना प्रकाश रूप ध्यान बतलाया है। यह अलौकिक ध्यान की क्रिया हृदय चक्र को जाग्रत कर वहाँ गुरु को विराजमान कर देती है।

गुरु महाराज ने गुरु का सबसे उत्तम रूप "माँ" का रूप बतलाया है। माँ सर्वथा हमेशा अपने पुत्र से संबंध बनाए रखती है। उसको हमेशा चाहे पुत्र कैसा भी नालायक हो, अपने पुत्र का ख्याल रहता है। और इसीलिए माँ रूपी गुरु के तार-सुरति की धार, उसका आकर्षण शिष्य पर बना रहता है और जब बना तो शि ऊँचा उठता चला गया-यहाँ उसका कोई प्रयास नहीं रहा। यह तो सब कुछ इसलि क्योंकि गुरु के मातृ हृदय ने उसे करुणाव अपना लिया है। विडम्बना यह है कि यह स होते हुए भी कभी-कभी विश्वास डगमगा ज है। हमारी सुरति की धार उनसे टूट जाती इसके बारे में रामायण में एक प्रसंग सुग्रीव का

सुग्रीव राम से मिलता है लेकिन उसका र में विश्वास नहीं है। वह अनभिज्ञ है कि र अनन्त शक्तियों के धारक हैं-वे परमात्मा हैं अपनी तकलीफें और परेशानियाँ बस वैसे उनको बतलाता है, लेकिन तब उस पर कृपा हो है और उसे भगवान राम का सान्निध्य प्राप्त क का अवसर मिलता है। जब वो उनके साथ वन विचरण करता है तब वो पाता है कि भगवान र तो जहाँ से गुजर जाते हैं सब व्याधियाँ स्वतः दूर हो जाती हैं। ताल के वृक्ष, दुन्दुभि राक्षस क हड्डियाँ इत्यादि स्वतः ही धराशायी हो जाती है उस सान्निध्य का असर यह होता है कि उसे य विश्वास हो जाता है कि ये ऐसे-वैसे मनुष्य न बल्कि समस्त शक्तियों के धारक स्वयं परमपि परमेश्वर हैं। विश्वास होने पर वो भगवान रा

जिनके सान्निध्य में कह देने भर से व्याधियाँ स्वतः दूर हो जाया करती हैं।

ऐसे ही गुरु महाराज एवं जिया माँ के अंश, उनके रूप में परम पूज्या बड़ी बुआजी एक उच्च संयोग के कारण मुरादाबाद क्षेत्र में विराजमान रहीं। उनके बारे में क्या कहा जाये। यह सम्मुख जाने पर ही पता चलता था कि उनके चरणों से प्रकाश की धार सदा बहती रहती थी। एक बार जयपुर भण्डारे की बात है। बहुत गर्मी थी। मैं द्वारका उनके निवास पर गया। दो-तीन दिन पहले, मैंने कहा कितनी तेज गर्मी है। कूलरों का कैसे प्रबंध होगा तो आपने कहा-सब हो जाएगा। देखने में यह आया कि उनके कहने मात्र से ही काम हो जाया करता था। पाँचों सिटिंग में बदली छाई रही। गर्मी का नामोनिशान नहीं रहा।

जब मार्च 2002 के आखिर में परम पूज्य पापाजी बहुत बीमार थे। छोटे ताऊजी उन्हें देखकर मथुरा लौट गए थे। उस समय परम पूज्या बड़ी बुआजी और परम पूज्या बड़ी ताईजी जयपुर घर पर थीं। छोटी होली का समय आया तो उन्होंने यही कहा कि होली का इंतजाम यहीं आँगन में कर लो छोटा-सा। आँगन में ही होली जलाने का छोटे रूप में प्रबंध किया गया। देखने में आया कि जैसे उसके पश्चात् ऐसा लगा मानो गुरु महाराज एवं जिया माँ पधार गई हों। संतों की उपस्थिति थी। घर का वातावरण बदल गया। माया का प्रवाह रुक-सा गया, उसकी गति मंद हो गई। शून्यता आ गई । जैसे एक कवि की पंक्तियां हैं—

''नदिया धीरे बहो-धीरे बहौ,
मेरे गुरु उतरेंगे पार।
नदियाँ धीरे बहौ-धीरे बहौ।''

जाने का समय आ गया और सुबह ब्रह्ममुहूर्त में परम पूज्य छोटे भैया अपने निज धाम को प्रस्थान कर गए। उसके बाद परम पूज्या बड़ी बुआजी के सान्निध्य में जीवन सहजतापूर्वक चलता रहा। आप की सभी पर बहुत कृपा रहा करती थी। बीमार होने पर भी न नहीं करती थीं। उनके आने से छटा दूसरी ही हो जाया करती। आज उनके बिना हम अनाथ हो गए हैं। अब बस आपकी याद, आपकी कृपा ही इस रिक्तता को दूर करने का माध्यम है। उन्हीं से प्रार्थना है कि हम सबको अपनाये रखें, सब पर दया करें। ●●

सच्चा प्रेम

सच्चा प्रेम पवित्र, निष्कपट हृदय से होता है। जिसका हृदय पवित्र होता है, निर्दोष होता है, निष्कपट होता है वही सच्चे प्रेम का रसास्वादन कर सकता है। प्रेम में पाने की मांग नहीं होती। प्रेम पाने का नाम नहीं, दिखावे की वस्तु नहीं है, यह तो सहज-सरल नदी की उस धारा के समान होता है, जो केवल बहती जाती है और बिना कुछ अपेक्षा किए प्यासे, अतृप्त हृदय को तृप्त करना जानती है। सच्चे प्रेम में वासना एवं तृष्णा की मलिनता नहीं होती, बल्कि यह तो नवजात शिशु के समान निष्पाप एवं निर्दोष होता है।

—स्वामी रामतीर्थ

ज्ञान विवेक विरति विज्ञाना

—डॉ. आर. एन. सिंह

महात्मा श्री तुलसीदास जी के मतानुसार आत्मा के अनुभव के आनंद एवं उसके सुन्दर प्रकाश से जीव का संयोग ही योग है। उनके अनुसार समस्त ज्ञान, विवेक एवं वैराग्य के समुच्चय की संज्ञा योग विज्ञान या तत्वविज्ञान है। जैसे बाह्य जगत में पदार्थ का ज्ञान प्राप्त करने के लिए द्रव्य विज्ञान होता है वैसे ही आन्तरिक जगत में चेतना का ज्ञान प्राप्त करने के लिए एवं उसके विकास के लिए चेतना-विज्ञान होता है जिसे तत्वविज्ञान या योग विज्ञान भी कहते हैं। जैसे पदार्थ का विखण्डन करने पर पता चलता है कि प्रत्येक पदार्थ प्रकाश का एक घनीभूत रूप (ऊर्जा) है, वैसे ही गुरु के प्रकाश में जब ध्यान द्वारा प्रकृति के समस्त जड़ तत्वों को भेदते हुए साधक आगे बढ़ता है तब अन्त में उसे एक ऐसे तत्व के अस्तित्व का पता चलता है जिसे उपनिषदों ने "निर्धूम ज्योति" कहा है तथा जिसे ऋषियों ने आत्मा का नाम दिया है। कपिलमुनि के अनुसार जीव का इस तत्व के साथ समागम ही योग है। इस आन्तरिक ज्ञान को शास्त्रों ने पराविद्या कहा है जिसे आधुनिक भाषा में योग विज्ञान या तत्वविज्ञान कहते हैं।

जो ज्ञान पदार्थ के स्वरूप को बदलता है उसे विज्ञान कहते हैं। जो ज्ञान मनुष्य के आन्तरिक जगत को बदलता है, उसके व्यक्तित्व का कायाकल्प करता है एवं उसकी चेतना को रूपान्तरित करता है वह योग विज्ञान कहलाता है। यही परमज्ञान है। यही जीवन का सर्वोच्च ज्ञान है। इस ज्ञान को ही भगवान कृष्ण ने गीता में विज्ञान का नाम दिया है। वह अर्जुन से कहते हैं—

"ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः।
यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते॥"

गीता (7/2)

अर्थात् हे पार्थ! विज्ञान समेत इस पूरे ज्ञान को मैं तुझसे कहता हूँ जिसे जान लेने से इस लोक में फिर और कुछ भी जानने के लिए शेष नहीं रह जाता। उनके मतानुसार परमात्मा की शरण चले जाना एवं अपने मन को उनके मन से मिला देना ही परमयोग है।

कठोपनिषद के अनुसार दृष्टा साधन द्वारा अपने खण्डित मन को अखण्ड कर देना ही योग है। मन अखण्ड होते ही वह समाप्त हो जाता है। उसका अस्तित्व तभी तक है जब तक वह खण्डित है। मन अखण्ड होते ही समाधि स्वमेव घटित हो जाती है और साधक अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है। समस्त साधनायें खण्डित मन को अखण्ड बनाने के लिये ही हैं। अखण्ड मन ही शुद्ध एवं पवित्र होता है तथा समाधि के द्वार खोलता है। समाधि घटित होते ही मैत्री, करुणा एवं मुदिता के भाव स्वमेव उदय हो जाते हैं। अगर ऐसा नहीं होता तो यह समझना चाहिए कि अभी ध्यान में कुछ कमी है।

महर्षि पतंजलि के मतानुसार अपने अन्तर्जगत को अनुशासित करने की कला का नाम योग विज्ञान है। उनकी दृष्टि में योग एक आन्तरिक अनुशासन है जो चित्त की वृत्तियों के निरोध से घटित होता है। चित्त की वृत्तियों के चलायमान होने से हमारे अन्तर्जगत में सदैव हलचल बनी रहती है। चित्त की वृत्तियों की हलचल रुक जाने पर चित्त पर वाह्य जगत के चित्र नहीं बनते। उस समय परमात्मा के द्वार साधक के लिए खुल जाते हैं और हमारे निर्मल चित्ताकाश में परमात्मा का प्रतिबिम्ब ऐसे ही उतर आता है जैसे पूर्णिमा का चाँद निर्मल सरोवर में परिलक्षित होता है। वृत्तियों के निरोध से योग घटित होता है। चित्त पर संयम करने से योग की घटना घट जाती है क्योंकि योग या समाधि हमारा स्वभाव है। इसके लिए कुछ करना नहीं है। योग या समाधि प्रयास से घटित होने वाली कोई घटना नहीं है। यह तो नैसर्गिक है, स्वभावगत है। केवल चित्त के संयम द्वारा योग के घटित होने में आने वाली बाधाओं को दूर करना होता है। चित्त संयम करने से वृत्तियों सहित चित्त का ज्ञान हो जाता है एवं अस्मितानुगत समाधि घटित हो जाती है। वह कहते हैं "हृदये चित्तसंवित्।"

गुरु अष्टावक्र भी महर्षि पतंजलि के मत का समर्थन करते हैं। उनके मतानुसार योग चित्त का विश्राम है। अगर साधक थोड़ी देर के लिए साक्षी बन कर अपनी देह के अभिमान से अलग हो जाये एवं अपने चित्त को विश्राम की अवस्था में ले आये तो सुख-शान्ति एवं मुक्ति तत्काल घटित हो जाती हैं।

"यदि देहं प्रथककृत्य चिंतिविश्राम तिष्ठति।
अधुनैव सुखी शान्तः बन्धमुक्तो भविष्यति॥"

गुरु अष्टाबक्र की स्पष्ट धारणा है कि अभ्यास एवं प्रयास से कुछ हाथ नहीं आता। वह कहते हैं–

"आयासात सकलो दुखी नैनं जानाति कश्चन्।"

अर्थात् कोई विरला पुरुष ही इस बात को जानता है कि प्रयास से केवल दुःख होता है, योग घटित नहीं होता। वह आगे कहते हैं कि यह बड़ी अद्‌भुत बात है कि योग के अभ्यास में उलझे हुऐ लोग उस शुद्ध-बुद्ध आनन्दमयी आत्मा को नहीं जान पाते।

"शुद्धं बुद्धं प्रियं पूर्णं निष्प्रपंचं निरामयम्।
आत्मानं तं न जानन्ति तत्राभ्यासपरा जनाः॥"

उनके मतानुसार केवल निश्चयात्मक ज्ञान ही मनुष्य को शान्ति एवं मुक्ति प्रदान करता है। केवल अभ्यास से साधक को स्थायी शान्ति नहीं मिलती। जब तक मन, बुद्धि एवं चित्त की वृत्तियाँ सक्रिय हैं तब तक स्थायी ज्ञान एवं मुक्ति की कल्पना नहीं की जा सकती। जब तक साधक अन्दर से पूरी तरह गल नहीं जाता, जब तक उसका मन, बुद्धि एवं वृत्तियाँ पूरी तरह निष्क्रिय नहीं हो जातीं तब तक उस में ऋतम्भरा बुद्धि का उदय नहीं होता। उनका स्पष्ट मत है :

"ईश्वरः सर्व निर्माता नेहान्य इति निश्चयी।
अन्तर्गलित सर्वांशः धीरः कवापि न सज्जते॥"

अर्थात् जो अन्दर से सब प्रकार से गल गया है ऐसे ही साधक को यह निश्चयात्मक ज्ञान हो पाता है कि इस संसार में परमात्मा के अतिरिक्त

(शेष पृष्ठ 32 पर)

संत चरित

संत श्री वाजिद साहब

—श्रीमती लीला कृपलानी

कलिंग विजय के बाद सम्राट अशोक, 'अशोक महान' तो बन गये परन्तु जब उन्होंने युद्ध भूमि के वीभत्स दृश्यों को देखा तो उनका हृदय परिवर्तन हो गया, उन्हें जीवन का दर्शन समझ में आया, लौकिक जीवन की नि:सारता का ज्ञान पाकर वे अभिभूत हो गये और उनके जीवन की राह ही बदल गई।

ऐसे ही एक संत हुए हैं "संत वाजिद साहब" एक साधारण सा पढ़ा-लिखा, सीधा-सरल, सहज व्यक्ति हाथ में तीर कमान लिये जंगल में शिकार करने जाता है और जैसे ही तीर को कमान पर चढ़ा कर हिरणों के झुंड पर निशाना साधने को होता है तो तीर छोड़ने से पहले ही हिरणों के उस झुंड को कुलांचे मारते हुए देखता है तो देखता ही रह जाता है। उस अद्‌भुत दृश्य में उन्हें जिस पारलौकिकता के दर्शन हुए उसने उन्हें संत बना दिया।

जीवन की सत्यता और सौंदर्य की खोज में बरसों भटकने के बाद उन्हें संत दादूदयाल का सान्निध्य प्राप्त हुआ। उनके शिष्यत्व में रहकर उनके ज्ञान चक्षु खुल गये। किसी ने ठीक ही कहा है–

"जान-ओ दिल कुर्बान है,
पीर-ए-तरीकत के लिये
जिसने आमादा किया,
राह-ए-हकीकत के लिये
सो रहा था ख़्वाबे गफलत,
कुछ खबर अपनी न थी
यक-ब-यक चौंका दिया
असली वसीयत के लिये।"

अर्थात् आंतरिक ज्ञान देने वाले उस गुरु पर यह जान भी न्यौछावर है, जिसने जीने की राह बता दी। असली वसीयत तो अंतस उजाले की है जिसे पाकर चौंकना लाजिमी है।

रूहानी राह पर चलते संत वाजिद भक्ति रस में डूब गये और भक्ति रस की धारा काव्य बन कर फूट पड़ी और उस धारा ने उन्हें संत श्री कबीर दास और श्री रहीम जी के समकक्ष ला कर खड़ा कर दिया। वे जाति से मुसलमान पठान होते हुए भी भगवान राम के अनन्य भक्त हुए। आपके बारे में संत श्री राघोदास लिखते हैं–

'छांड़ि के पठान-कुल राम-नाम कीन्हो पाठ,
भजन प्रताप सूं वाजिद बाजी जीत्यौ है।
हिरणी हनन उर डर भयो भयकारी,
सील भाव उपज्यो दुसील भाव बीत्यो है।"

उठते-बैठते, खाते-पीते, सोते-जागते, रात-दिन उन्हें राम का स्मरण ही रहता था। एक स्थान पर संत जी फरमाते हैं–

"चटक चांदणी रात बिछाया ढोलिया,
भर भादव की रैण पपीहा बोलिया।
कोयल सबद सुणाय रामरस लेत है
हरि हाँ वाजिद, दाज्यो ऊपर लूण पपीहा देत है।

जिस प्रकार मीरा कृष्ण भक्ति में लीन हो गईं

थीं उसी प्रकार वाजिद राम भक्ति में लीन रहते थे। अपने राम से दूर रहकर उनको विरह वेदना सताती थी। श्री रहीम दास जी के अनुसार प्रेम पंथ अति कठिन है क्योंकि इस में प्रेमी को मिट जाना पड़ता है तब प्रियतम से मिलना होता है जैसे मीराबाई ने स्वयं को मिटाकर जोगन बनकर कृष्ण पाये। ऐसे ही संत वाजिद का प्रेम भी अपने आराध्य के प्रति मीरा जैसा ही है। वे विरह अवस्था में कहते हैं–"तुम न जाने किस परदेस में चले गये हो, मैंने सारा संसार छान मारा है पर तुम्हारे जैसा मुझे कोई नहीं मिला। मैं तुम्हारे लिये जोगी हो गया हूँ अपनी एक झलक दिखाकर तुम मुझसे ऐसे दूर हुए मानो तुमसे गौना तो हो गया पर विदाई नहीं हुई।

"जब ते कीनौ गौन मौन नहिं भावहि,
भई छमासी रैन नींद नहीं आवहि।
मीत तुम्हारी चीत रहत है जीव कूं
हरि हाँ वाजिद, वो दिन कैसो होई,
मिलौं हरि पीव को।"

संत वाजिद साहब सबके प्रति समभाव रखते थे। उनकी दृष्टि में कोई गरीब-अमीर, हिन्दू-मुसलमान, शूद्र-सवर्ण, स्त्री-पुरुष नहीं था। उनका कहना था कि भेद-भाव अनीति का भाव है जब ईश्वर सबको अपनी संतानें मानता है तो हम भेद विकार क्यों रखें। हम अपने भीतर जितने भेद रखेंगे उतने ही हम उस परम पिता से दूर होते जायेंगे और उससे मिलना असंभव हो जायेगा।

कबीर दास जी कहते थे–

जो जल बाढ़ै नाव में, घर में बाढ़ै दाम।
दोऊ हाथ उलीचिये, यही सज्जन को काम॥

अर्थात् संग्रह प्रवृत्ति पर अंकुश हो। इसी प्रकार संत वाजिद साहब भी धन संचय को अर्थहीन बताते हुए कहते हैं कि यह जीवन नश्वर है आखिर कितना खा पायेंगे–

"धन सांचता दिन-रैण कहो कुण खाहिंगे
तन-धन है मिजमान दुहाई राम की
हरि हाँ ले दे खर्च खिलाय धरी किस काम की।"

संत का एक अर्थ ही है "संतुलन" जो जीवन में हर परिस्थिति में सम रहे वही संत है। अतः वाजिद साहब ने भी यही सोचा और किया कि मैं उसी में राजी हूँ जो मालिक की रजा है। उन्होंने बाहरी जगत से नाता तोड़कर आंतरिक जगत की सैर की और उस अविनाशी तत्व को पाया जो विरले ही पाते हैं।

हमारे परम पूज्य परम भागवत पंडित जी महाराज (पू० प० मिहीलाल जी) कहा करते थे कि संत आत्मज्ञानी होते हैं। ऐसे ही थे संत वाजिद साहब, आत्मज्ञानी होने के कारण वे अल्पभाषी, मृदुभाषी गुरु मुख और सदाचारी थे। प्रकृति के हर कण में उन्हें रसानुभूति होती थी।

साम्प्रदायिक सद्भाव के प्रतीक संत वाजिद साहब के चरणों में वंदन!

परम पूज्य श्री गुरु महाराज को कोटि-कोटि प्रणाम, वे हम सब पर कृपा करें।

"ओऽम् शांति" ●●

लेने और न लेने का भाव तो ग्राहक का भाव है, शिष्य का नहीं। शिष्य का भाव तो समर्पण है और किसको कितना मिलता है, यह तो उसकी पात्रता पर निर्भर है।

एक ग्राह्य परम्परा

—डा० मुकुन्द श्रीवास्त

हमारे सनातन धर्म के अन्दर वर्षों की खोज भरी तपस्या व मेहनत के बाद बनायी गयी जीवन-चर्या व्यक्ति को संसार से या जीवन से प्राप्त होने वाले चारों स्तम्भ—अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष को सहज ही उपलब्ध कराती है। परन्तु कलियुग की कालिमा से इसमें खोट आ गया, मलिनता आ गयी। इसका प्रभाव यह हुआ कि पहले विचार, फिर कर्म दूषित हो गए। शनैः-शनैः इसने पूरे समाज को ही पतित कर डाला। व्यक्तिगत तौर पर व्यक्ति स्वार्थी हो गया, सामाजिक तौर पर सामूहिक दायित्व से मुँह मोड़ बैठा, धार्मिक क्रिया-कलापों के नाम पर धार्मिक ग्रन्थों का सतही पाठ, चन्द मन्त्रों का जाप और कुछेक व्रत-त्यौहार तक सीमित हो गया। पाखन्डियों की बन आयी। उन्होंने अपने स्वार्थ में धर्म के नाम पर ही युद्ध करवा दिया, विद्वेष फैला दिया। आज भी धर्म के नाम पर लूट, हिंसा, ठगी और अन्याय देखा जा सकता है। न्याय और सच्चाई से विलग करने का पथ धर्म का तो हो ही नहीं सकता। ऐसी आँधी चली है कि धर्म का असली मर्म ही विलुप्त हो गया है।

सभी धर्मों के दो अंग होते हैं—पहला 'बाहरी या शरीयत' और दूसरा 'अन्दरूनी या रूहानी'। अलग-अलग धर्म या सम्प्रदाय में जो बातें अलग होतीं हैं वह केवल बाहरी या शरीयत की होती हैं। धर्म चाहे कोई भी हो सबका आन्तरिक स्वरूप एक ही होता है। वही उस वास्तविक रूप होता है। एक सच्चे धार्मिक स के लिए किसी भी व्यक्ति का बाहरी स्वरू मायने नहीं रखता वह तो आत्मा की शक्ति रूहानी ताकत पहचानते हैं और उसी को करने की तालीम देते हैं। संसार में एक वर्ग ऐ अवश्य होता है जो सांसारिक उहापोह से ऊब बचने का रास्ता खोजता रहता है। ऐसे में ज उनकी ही परिस्थिति में काम आने वाली पद्ध मिल जाये तो उनका उधर झुकना स्वाभाविक है।

आमतौर पर साधना-पथ पर अग्रस साधक लगातार कठिन परिश्रम करने के ब ऐसी स्थिति में आता है कि गुरु की कृपा होती और उस पर शक्तिपात होता है। उसे ऊँचा उठा जाता है। यहाँ सूफी-मत की साधना में रामाश्र सत्संग में सालिक को केवल पीर (गुरु) क सोहबत से ही ऐसी तवज्ज़ह (शक्तिपात) मि जाती है कि साधक कई मरहलें (मंजिल) प कर जाता है, कहा भी है—

राहे सुलूके-ए-इश्क में, रियाज़त नहीं जरू
सौ—सौ मुक़ाम होते हैं, तय एक ही नज़र मे

पीर की सोहबत का रास्ता गुरु का संग सत्संग होता है, जहाँ आते रहने मात्र से ही य कठिन काम सरल हो जाता है ।

इस तरह की उन्नति के बाद साधक अपने

आपको शक्ति-संपन्न समझने लग सकता है। इस अवस्था में अहंकार आने की संभावना रहती है। इससे बचने का जो रास्ता निकाला गया, वही इस पथ की दूसरी विशेषता भी है और वह है—'इश्क-हकीकी' (ईश्वर-प्रेम)। ईश्वर (गुरु) से प्रेम बनाए रखना, उनके चरणों में अपनी जगह तलाशना व्यक्ति के अंदर अहंकार को पनपने ही नहीं देता है। एक दूसरी बात यह है कि महापुरुषों ने इसी इश्क-हकीकी (ईश्वर-प्रेम) को विराट स्वरूप दिया है। उन्होंने जर्रे-जर्रे (कण-कण) में ईश्वर का दर्शन किया और उन्होंने जर्रे-जर्रे से प्रेम किया और इतना प्रेम किया कि हर जीव, हर शै इस प्रेम से सराबोर हो गया। वस्तुतः उसी प्रेम के छीटों ने उनसे मिलने-जुलने वालों को उनसे प्रेम करने पर विवश कर दिया और उनका रूहानी सफर अनजाने ही शुरू हो गया। उसी प्रेम के विवश उनसे बार-बार मिलने की इच्छा रहती है और यदि इस बीच अहंकार के छींटे दिखें तो वह उसे भी दूर कर देते हैं।

इसकी तीसरी विशेषता है—'नफ्स-कुशी' (इंद्रिय-संयम)। संसार के प्रलोभन व्यक्ति को कभी भी गिरा देते हैं जिससे वर्षों की मेहनत पर पानी फिर जाता है। इन्द्रिय-संयम यद्यपि साधना का एक आवश्यक अंग है, लेकिन इसके लिये की जाने वाली साधना कठिन है, उसमें चूक होने की भी संभावना रहती है। यहाँ केवल पीर की निगेबानी से धीरे-धीरे बदलाव आता जाता है। हमारे यहाँ सत्संग में भी किसी से किसी भी बुरी आदत या स्वभाव को छुड़ाने के लिए कोई जोर नहीं दिया जाता। सत्संग में आते रहने मात्र से पीर की निगेबानी (गुरु की देख-रेख) में यह अपने-आप छूट जाता है। फिर धीरे-धीरे वैराग्य भी आने लगता है—और यह सब बिना कोई कठिन साधना किये।

चौथी विशेषता बहुत ही खास है क्योंकि साधना-पथ का भवन जिस बुनियाद पर खड़ा होता है यह उसका निर्माण करता है। यह है—'सोहबत' और 'मुताबअत'। सोहबत यानी साथ या 'सत्संग' और मुताबअत होता है आज्ञा पालन करना या अनुकरण करना। जब परम् पिता की जीव पर अहैतुकी कृपा होती है तभी यह संयोग बनता है कि जीव को मनुष्य योनि मिलती है, 'प्रारब्ध' के अनुसार ईश-पथ पर चलने की प्रेरणा और 'परम् कृपा' स्वरूप 'सद्गुरु' का साथ मिलता है। इसके बाद कुछ करने को बचता नहीं है, फिर भी सत्संग में निरंतर उपस्थिति और जो कुछ आदेश हो उसका पालन करना ही सर्वोपरि होता है। यही बुनियाद है जिस पर चलकर व्यक्ति या सालिक का रूहानी सफर तय होता रहता है। रास्ते की ऊँच-नीच भी ऐसे साधक को गिरा नहीं पाती और वह अपनी मंजिल पा लेता है।

पाँचवीं और सर्व ग्राह्य खासियत यह रही कि सारे मुकामात हासिल करने के लिए 'गृहस्थी' का मार्ग अपनाया। लगभग सारे ही संत गृहस्थ थे उनकी बनायी गई पद्धति गृहस्थों के सर्वथा अनुकूल रही। गृहस्थी उनके मार्ग की बाधक नहीं बल्कि मददगार थी। यह एक ऐसी धारणा थी जो तत्कालीन हिन्दू समाज में फैली

धारणा के विपरीत थी। कमोबेश आज भी यह भ्रान्ति फैली है कि अध्यात्म-पथ के लिये व्यक्ति का घर बार छोड़कर संन्यासी होना जरूरी है। दूसरी भ्रान्ति यह है कि आजकल ऐसी विद्या मिलती ही कहाँ है? ऐसे लोगों से निवेदन है कि एक बार 'सत्संग' में आकर अवश्य देखें।

इसकी छठी विशेषता यह है कि इसमें अपने पुरुषार्थ के बजाए 'गुरु-कृपा' या 'ईश-कृपा' का महत्व बताया गया है। एक सूफी सन्त कहते हैं कि ''मैं जो कुछ हूँ वह खुदा का फज़ल है न कि मेरा अमल''–अर्थात् मेरे किये कुछ नहीं हुआ जो कुछ हुआ वह ईश्वर या खुदा की रहमत है। इस कृपा का ही परिणाम है कि शिष्य के पथ पर आने वाली बाधाएँ, पूर्व जन्मों के संस्कार आदि सभी 'समर्थ परम् दयालु गुरुदेव' इस तरह हल्का कर शिष्य तक पहुँचाते हैं और उसे कभी-कभी खुद भी भोग कर काट डालते हैं कि शिष्य आसानी से शास्त्रों में वर्णित महान भव-बन्धनों से छूट जाता है। कहा भी है–

भव-समुद्र अति दुर्गम भारी,
गुरु की कृपा गोपद सम तारी।
भव से पार करें इक पल में,
जो गुरु कृपा करें।

सातवीं विशेषता यह है कि इस पथ पर 'पीर या गुरु' अपने सालिक (शिष्य) से अपनी देख-रेख में कुछ जिक्र (जाप) या मरकबा (ध्यान) कराता है जिसका उद्देश्य होता है सालिक के 'कल्ब' (हृदय) को 'जाकिर' (जागृत) कर देना। हमारे यहाँ भी परमपूज्य गुरुदेव के निर्देशन में हम लोग ध्यान करते हैं। ऐसा लगातार करते रहने से जो परिवर्तन आता है वह तो व्यक्ति स्वयं महसूस कर सकता है और धीरे-धीरे स्वभाव में परिवर्तन का आना उनके साथ रहने वाले भी महसूस करते हैं।

इन विशेषताओं पर गौर किया जाए तो पता चलता है कि हमारे सत्संग की व्यवस्था इन्हीं बुनियादों पर आधारित है और दूसरी ओर यदि हिन्दू धार्मिक-ग्रन्थों के अधार पर देखा जाए तो यह इस कसौटी पर भी खरा उतरता है। सभी धर्मों की आत्मा तो एक ही होती है। हमारे सनातन धर्म की तो यही विशेषता रही है सभी वाद (साकार/निराकार) सभी विचार-धारायें (शैव/वैष्णव आदि), सबका–'हाँ, ऐसा भी है!' कहकर स्वागत ही किया है। कभी किसी से विरोध की बात नहीं की। ऐसी विशाल दृष्टि से ओतप्रोत हमारी संस्कृति है। परमपूज्य श्री गुरुदेव का सत्संग है।

सद्‌गुरु कुछ करता नहीं, वह तो नि:शब्दता की वाणी में, अपनी अलौकिक शक्तियों के प्रयोग से शिष्य को खींचता हुआ ऊपर ले जाता है और उसे सारे स्थानों की सैर करा देता है। उसका सारा भ्रम मिटा देता है। पुस्तकों के पढ़ लेने और बातें कर लेने से यह भेद नहीं खुलते।

–पूज्य गुरुदेव

अंतर्जगत का सूक्ष्म विज्ञान

—श्री मथुरा प्रसाद सिंह

योग विज्ञान भारतवर्ष की प्राचीनतम संस्कृति, जीवन दर्शन एवं आध्यात्मिक जीवन जीने की विधि है। इस सूक्ष्म विज्ञान के प्रथम प्रवक्ता योगेश्वर भगवान शिव हैं। जीव-जगत के कल्याण के लिए आत्मरत, अध्यावसायी मंत्र द्रष्टा ऋषियों ने इसे उपलब्ध कराया। यह उनका अनुभूत अनुसंधान है। अपनी प्रज्ञा से सूक्ष्म विज्ञानियों ने पाया कि मनुष्य जो दिखता है या अपने को जो समझता है, केवल वही नहीं बल्कि कुछ और है। वह अणुरूप में विभु है, उस अनंत का लघु रूप है। अल्प सामर्थ्य के साथ वह अनंत ही है। उससे अलग होते ही इसकी संज्ञा जीवात्मा हो गई। जीवात्मा होकर वह सहज से असहज हो गया, शांत से अशांत हो गया, समुद्र छिटक कर बूंद हो गया। पुनः उसी मूल से कैसे योग हो जाय। यही योग विज्ञान का मूल विषय है।

शिव से बना जीव प्रकृति के नित-नवीन बाजार में फंस गया। उसने जो बाहर देखा वह प्रिय लगा। उसकी चित्तवृत्तियाँ बहिर्मुख हो गईं। ज्यों-ज्यों चित्तवृत्तियाँ बहिर्मुख होती गईं उन पर रज और तम का आवरण मोटा होता गया। प्रकृति प्रबल हो गई, पुरुष खो गया। जीव ने देह को देही समझ लिया। अब देही को पहचानने के लिए, स्व के साक्षात्कार के लिए प्रयत्नपूर्वक बहिर्मुखी वृत्तियों को अंतर्मुखी करना होगा। बाहर के बजाय अपने भीतर ही झांकना होगा। ज्यों-ज्यों उसकी वृत्तियाँ अंतर्मुखी होंगी त्यों-त्यों रज और तम का अंधेरा छटेगा और सत् का प्रकाश फैलेगा। सत् के उजाले में ही वह स्वयं को पहचान सकेगा। वह घड़ी धन्य होगी जब वह देख सकेगा कि वह तो वही है जो वह (अनंत) है। दृष्टि दिव्य हो जायगी। वह सबमें और सब उसमें दिखने लगेंगे। ''ममात्मा सर्व भूतात्मा'' का बोध हो जायगा। अंतर्जगत के सूक्ष्म विज्ञान का यही चमत्कार है।

महर्षि पतंजलि, श्री भगवान कपिल या श्री ब्रह्मर्षि वशिष्ट आदि के अनुभूत योग विज्ञानों के नाम अलग-अलग हैं, साधन विधि में भी थोड़ी भिन्नता है पर सबका लक्ष्य एक ही है। अपने-अपने मार्ग से चलते हुए सबका पर्यवसान भक्ति या उपासना योग में ही होता है। ज्ञान, कर्म या भक्ति योग कोई अलग-अलग योग नहीं हैं बल्कि एक दूसरे से जुड़े हुए हैं, एक दूसरे के पूरक हैं। सबका मार्ग कर्मयोग से ही आगे बढ़ता है।

अष्टांग योग, कुंडलिनी योग, हठयोग, मंत्रयोग, नादयोग आदि योगों की पद्धतियों में कई समानताएं भी हैं। अभ्यास और वैराग्य सभी

योग विज्ञानों का अपरिहार्य अंग है।

बाह्य एवं आंतरिक शुचिता, अभ्यास की निरंतरता, निष्कामता, अनासक्तता, लक्ष्य के प्रति एक निष्टता, वाणी की ऋजुता एवं व्यवहार की मृदुता सभी योग विज्ञान के आवश्यक अंग हैं। उक्त सभी विशेषताएं तो निज कृपा के अंतर्गत आती हैं। सबसे आवश्यक अंग है गुरुकृपा। **''दुर्लभा सहजावस्था सद्‌गुरो करुणाविना।''** अंतर्जगत के सूक्ष्म विज्ञान में प्रवेश एवं साधना की सिद्धि बिना गुरु की सहायता के हो हीं नहीं सकती। संत कबीर कहते हैं कि तुम्हारे प्रयत्नों का भी योग साधना में महत्व है, पर एक 'भेदी' का साथ मिल जाय तो अंतर्यात्रा सुगम और सहज हो जायगी। अपने प०पू० गुरु महाराज के पदचिन्ह पर चलते हुए श्री गुरु महाराज ने जो सरल योग साधना अर्थात् 'समर्पण योग' की साधना हमें दी उसमें भी संत कबीर का 'भेदी' ही प्रमुख है। वे 'भेदी' को 'पुरोहित' की संज्ञा देते हैं जो असाधारण है। उन्हीं की वाणी में-

''जीव का ईश्वर से गठबंधन करा देना साधारण पुरोहित का काम नहीं है।'' हमारी साधना में तो केवल सद्‌गुरु ही सकल विज्ञानों का विज्ञानी है। सद्‌गुरु की सामर्थ्य एवं उदारता की प्रशंसा करते हुए श्री गुरु महाराज कहते हैं–**''कल तलक था मैकदे में.......साकी ने मुझे कतरे से दरिया कर दिया॥''** इससे अधिक सद्‌गुरु की कृपा का प्रमाण क्या हो सकता है। हमारे श्री गुरु महाराज स्वयं प्रमाण भी हैं और प्रमेय भी। हमारे यहाँ ध्याता का ध्येय से योग ही योग विज्ञान है।

योग विज्ञान को हमें उपहार में देने वाले पूज्य ऋषिगण केवल तत्त्वदर्शी ही नहीं वरन् दूरदर्शी भी थे। उनकी दृष्टि मानव जाति के संतुलित विकास पर केन्द्रित थी। स्वस्थ तन और स्वस्थ मन का गहरा संबंध उन्हें ज्ञात था। इसीलिए योग तन का विज्ञान है और मन का भी, साथ ही आत्मा का भी।

मन के विज्ञान के रूप में यह अद्वितीय विज्ञान है। मन, बुद्धि, अहंकार और चित्त में अन्तर जगत के अति सूक्ष्म अंग हैं। ये सूक्ष्म अंग ही हमारे स्थूल अंगों को संचालित करते हैं, क्रियाशील रखते हैं। चित्त से हर क्षण उद्वेलित मन प्राणीमात्र के बंधन और मोक्ष का कारण कहा जाता है। यही हमें कभी देवता बनाता है और कभी दानव। इन सूक्ष्म अंगों का नैसर्गिक स्वभाव, स्पंदन, हरकत एवं पल-पल में बदलते रूप का जैसा व्यापक और विस्तृत अध्ययन योग विज्ञान में है वैसा अन्यत्र कहीं नहीं है। चंचल मन को साधने की वैज्ञानिक प्रक्रिया योगी से अच्छा कोई नहीं जानता। योगी मन की अतल गहराई में उतरकर उसमें कई जन्मों के जमे कुसंस्कारों, कुविचारों को खोद कर निकाल पाता है। यह स्थूल से सूक्ष्म की अन्तर्यात्रा है। इसकी एक और खास विशेषता है। यहाँ पाठ और पाठक आप स्वयं होते हैं। उपलब्धि भी आप ही हैं।

●●

योग विज्ञान से आत्म बोध

—श्री आर० के० मिश्रा

हमने स्वयं की वास्तविकता का रहस्य न जान पाने के कारण व इस प्राप्त मानव जीवन के लक्ष्य की सही जानकारी न होने से इसी संसार और यहाँ की विषय वस्तुओं में सुख की खोज करते हुए यहाँ की अनेकों जड़ संरचनाओं से योग किया। कारण यहाँ यह ही चेतन प्रतीत हो रहीं थीं, चेतनता इन्हीं के माध्यम से अभिव्यक्त हो रही थी। अन्य किसी चेतन सत्ता की न तो हमको जानकारी थी, न उसको जानने का हमारे पास कोई उपकरण ही था। जड़ उपकरणों (कर्मेन्द्रिय, ज्ञानेन्द्रिय, मन, बुद्धि आदि) से उस व्यापक, अनन्त चेतन का ज्ञान कैसे हो सकता था। अतः हम अनन्त जन्मों से इन ज्ञात उपकरणों की सीमा में उपलब्ध शरीर, उसके सम्बन्धियों (संसार) और विषय-वस्तुओं से योग करते आ रहे हैं। इसकी आसक्तियाँ जिन्हें संगदोष कहते हैं, में सुखी-दुःखी होकर जन्म-मृत्यु के झूले में झूलते हुए जीवन पर जीवन नष्ट कर रहे हैं।

मानव जीवन महान कहा गया है क्योंकि इसी में जीवन के परम लक्ष्य—स्वयं की अनुभूति, आनन्द-प्राप्ति या दुःख निवृत्ति हो सकती है। इसी कारण संसार में तीन उपलब्धियाँ दुर्लभ कही गई हैं—पहला-यह मानव शरीर, दूसरा-इसके रहस्य को जानने या मोक्ष पाने की जिज्ञासा और तीसरा-एक अनुभवी, मुक्त महापुरुष जो हमारा मार्गदर्शन करने की कृपा कर सके और हमें अपनी शरण में ले लें।

श्री गुरुदेव द्वारा बतायी गयी जीवनशैली में कर्म तो होते हैं पर कर्त्ता बनकर नहीं, कामना की पूर्ति के लिए नहीं अपितु कर्त्तव्य की पूर्ति के लिए। आत्म बोध या स्वयं को जान लेना ही हमारा परम कर्त्तव्य है जिसकी पूर्ति केवल गुरु या इष्ट द्वारा ही हो सकती है। अतः हमारे कर्म इन्हीं गुरु अथवा इष्ट के प्रति समर्पित होने चाहिए। साधक का जीवन ही उनके प्रति समर्पित हो जाना चाहिए। समर्पण, बिना प्रेम के नहीं होता, अतः उनके साथ अटूट प्रेम के बन्धन में बंध जाना चाहिए। इसी को गुरु में मिलना कहते हैं। उन पूर्णदयानिधि के साथ हमारा योग बना रहना चाहिए। प्रेम में बड़ी शक्ति है। इससे उनका वास्तविक दिव्य रूप प्रकट हो जाता है, उनके यथार्थ स्वरूप का दीदार हो जाता है। शिष्य की जीवन नौका की पतवार वे स्वयं थाम लेते हैं। वे ही उसके माध्यम से अभिव्यक्त होने लगते हैं। जीवन के इस मोड़ पर शिष्य वास्तव में दृष्टा या साक्षी बन पाता है और उसके आराध्य पूज्य गुरुदेव कर्त्ता बन उसके जीवन का संचालन करने लगते हैं। शिष्य उनके प्रेम में सराबोर निश्चिन्त हो मस्ती में झूमने लगता है। पूज्य गुरुदेव कृपा कर न केवल अपना वास्तविक दिव्य स्वरूप उस पर प्रकट कर देते हैं वरन् इशारा कर बता देते हैं कि देखो यही वह पूर्ण, परम् सुन्दर, परम् आकर्षक, अनादि, अनन्त चेतन सत्ता है, जो जगत का संचालन कर रही है। हर तरफ इसी का

पसारा है और तुम भी तो वही हो, जिसको जन्म-जन्म से विस्मृत किए हुए थे, विमुख थे। तुम्हारा जीवन कृत-कृत्य हो गया और परम् लक्ष्य तुम्हें प्राप्त हो गया।

पूज्य गुरुदेव ने 'साधना के अनुभव' में साधक को इसी साधना शैली–'गुरु में लयता अथवा योग' के महत्व को समझाते हुए कहा है कि "गुरु के अस्तित्व में अपना अस्तित्व मिटा देना, गुरु में अपने को फना कर देना, उसमें अपना अहम् भाव लय करके एक हो जाना (योग कर लेना) ही साधक का मुख्य कर्त्तव्य है। यह अवस्था आते ही भगवत दर्शन हो जाता है। इसके तीन दर्जे होते हैं–

(1) गुरु का चिन्तन करते-करते, उसका अपना शरीर गुरु का शरीर ही दिखाई देने लगता है। उसके मुँह, हाथ, पाँव, आँखें, वाणी सब उन्हीं के रूप हो गई हैं। यह गुरु के स्थूल में अपने स्थूल का लय है।

(2) दूसरे में अपना मन, बुद्धि, अहंकार (अन्तःकरण) गुरु के मन, बुद्धि, अहंकार में लीन हो जाते हैं। यह सूक्ष्म का सूक्ष्म में लय कहलाता है।

(3) अन्त में साधक की चैतन्य आत्मा गुरु की चैतन्य आत्मा में समा जाती है। वह पूर्ण रूप से लय योगी बन जाता है। इस अन्तिम स्टेज में पहुँचने पर साधक के उसी दम आत्मनेत्र खुल जाते हैं। प्रभु साक्षात्कार, आत्मदर्शन हो जाता है।"

इस प्रकार जाने-पहचाने परम चेतन तत्व श्री गुरुदेव से उक्त प्रकार लयता प्राप्त कर, उनसे योग हो जाने पर फिर कुछ पाना शेष नहीं रहता। सारा संसार प्रेममय व गुरुमय दृष्टिगोचर होने लगता है। साधना सफल हो जाती है। स्वयं तथा संसार की वास्तविकता का रहस्य समझकर वह परमानन्द में विभोर हो सारे समाज को आनन्दित करता रहता है। परम पूज्य श्री गुरुदेव के चरणों में करबद्ध बस यही प्रार्थना है कि हम सब भी योग की इस अवस्था को प्राप्त हों। गुरु कृपा केवलम्॥

●●

पेज 23 का शेष भाग

कुछ नहीं है। ऐसा ही साधक धीर पुरुष कहलाता है। ऐसा व्यक्ति दिखावे के लिये कोई कार्य नहीं करता। ऐसा ज्ञानी पुरुष केवल तत्व को निश्चयपूर्वक जानकर सुखी हो जाता है।

परम पूज्य श्री गुरुमहाराज के मतानुसार पूर्ण श्रद्धा एवं समर्पण के साथ सद्गुरु या ईश्वर के आश्रित हो बैठ जाना ही योग है। इसमें साधक को समर्पण और प्रार्थना ये दो साधन करने होते हैं।

इस तरह पदार्थ विज्ञान की भाँति ही योग-विज्ञान भी एक पूर्ण विज्ञान है जिसका संबंध आदमी के अन्तर्जगत से है। जो काम पदार्थ विज्ञान नहीं कर सकता वह योग विज्ञान कर सकता है। अतः यह सर्वोच्च विज्ञान है। यह मनुष्य की चेतना के रूपान्तरण का विज्ञान है जिसे पदार्थ विज्ञान छू भी नहीं सकता। योग विज्ञान के प्रमुख उपकरण हैं ध्यान एवं सद्गुरु का सतत् आश्रय।

ऊँ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!! ●●

साहित्य परिचय

सन्तों की वार्ता

"सन्तों की वार्ता" परमपूज्य पण्डित जी की अन्तिम रचना है। इस पुस्तक में उनकी अनुभूतियों और पीयूषवाणी की भरमार है। उनकी यह अध्यात्म की मन्दाकिनी दीन वालों को, दुनियाँ वालों को, साधकों को, अन्धेरे में चलने वालों को, उजाले में आगे बढ़ने वालों को एक साथ निर्मल करती है, एक साथ शीतलता प्रदान करती है—दिशा देती है।

सम्पूर्ण पुस्तक में गुरु की यश-गाथा ही है परन्तु उसी में अनेक बहुमूल्य रत्न पिरोये हुए हैं। जो कोई भी इस वाणी को पढ़ेगा, हृदय को पवित्र और शीतल होता पायेगा।

कुछ सूफी सन्तों के विषय में भी लिखा है, वह भी पठनीय, मननीय और विचारणीय है। जीवन की पूर्णता दिखाने वाली यह एक अद्वितीय पुस्तक है।

परम भागवत पं. मिहीलाल जी की शीतल वाणी

शीतल वाणी परम भागवत पण्डित मिहीलाल जी की वाणी का संकलन है। पूज्य पण्डित जी एक समर्थगुरु के चरणों में पहुँचे थे। उनके सम्पर्क में रहकर उनके जीवन की जलन-तपन मिट गयी। इसीलिए उनकी वाणी ऐसी शीतल हो गयी थी जो सुनने और पढ़ने वाले को शीतलता प्रदान करती रही। उनकी अनेक पुस्तकें समय-समय पर प्रकाशित होती रहीं, उन्होंने जिज्ञासुओं और साधकों को तृप्त ही नहीं किया—दिशा बोध भी कराया। उनके बृहद साहित्य से एक संक्षिप्त संस्करण के रूप में यह पुस्तक-प्रकाशित हुई जिसे पढ़कर साधक और जिज्ञासु तथा मुमुक्षु उनके विचारों के प्रवाह, भावों की गहराई तथा अनुभव के अमृत का रसास्वादन कर सकते हैं। उनकी यह वाणी जीवन में प्रेरणा का स्रोत बनकर शीतलता प्रदान करेगी। जो भी इसे पढ़ेगा, आत्मिक लाभ से वंचित न रहेगा।

पौराणिक गाथाएं और उनके आध्यात्मिक रहस्य

क्षीर सागर और अनन्तनाग, समुद्र मन्थन, एकादशी व्रत, विश्वामित्र और राम, पंचवटी में राम, राम-लक्ष्मण संवाद, राम वाल्मीकि संवाद, श्रीकृष्ण सुदामा मिलन, यमलार्जुन आदि की ऐतिहासिक एवं आध्यात्मिक रहस्यों पर प्रकाश डाला गया है।

भगवान् श्रीकृष्ण की लालाएँ

भगवान श्रीकृष्ण ने धर्म के बिगड़े हुए रूप को संशोधन करके एक नवीन आदर्श मुमुक्षुओं के सामने रखा। भगवान श्रीकृष्ण के जीवन की लीलाएँ जैसे जन्माष्टमी, कालिया दमन, गोवर्धन लीला, गर्व और उसका फल, निष्काम व प्रेम योग, रासलीला आदि का आध्यात्मिक रहस्य, धर्म एवं परमार्थ की समीक्षा, त्रेता व द्वापर की नीतिओं और क्षत्रिय एवं ब्राह्मण धर्म की विवेचना की गई है।

समाचार इधर-उधर के

आप इस तरह बच सकते हैं यूटीआई से

—डा० अमरेन्द्र पाठक (यूरोलॉजिस्ट सर गंगाराम हॉस्पीटल नई दिल्ल

यूरिनरी ट्रैक्ट इंफेक्शन (यूटीआई) मूत्र मार्ग में होने वाले संक्रमण की बीमारी है। यूटीआई के लिए बड़ी आंत का बैक्टीरिया ईकोलाई जिम्मेदार होता है। हालांकि ईकोलाई के अलावा कई अन्य बैक्टीरिया, फंगस के कारण भी, यूटीआई की समस्या होती है। यूरिनरी सिस्टम के अंग जैसे किडनी, यूरिनरी ब्लैडर और यूरेथ्रा में से कोई भी अंग जब संक्रमित हो जाए तो उसे यूटीआई संक्रमण कहते हैं। हालांकि इसमें यूरिनरी ट्रैक्ट का निचला हिस्सा प्रभावित होता है और यह संक्रमण यूरेथ्रा तक फैल जाता है। लेकिन समय रहते इलाज न करवाने से यह ब्लैडर और किडनी को भी नुकसान पहुँचा सकता है। आमतौर पर बच्चों से लेकर बुजुर्ग किसी को भी यूटीआई हो सकता है, लेकिन 20 से 45 वर्ष की उम्र की महिलाओं में इसकी समस्या ज्यादा होती है। मेनोपॉज के बाद भी बुजुर्ग महिलाएं यूटीआई से प्रभावित होती हैं, क्योंकि इस दौरान शरीर में एस्ट्रोजन हॉरमोन का निर्माण कम होता है। मूत्र-मार्ग (यूरेथ्रा) के कमजोर होने या सिकुड़ने से भी यूटीआई संक्रमण होता है। पुरुषों के मुकाबले महिलाओं में यूरेथ्रा छोटा होता है। इससे बैक्टीरिया ब्लैडर को जल्दी प्रभावित करते हैं। ज्यादा उम्र के पुरुषों को यह बीमारी प्रोस्टेट ग्रंथि के बड़ा होने, डायबिटीज, एचआईवी या फिर यूरिनरी ट्रैक्ट में स्टोन होने के कारण होती है।

क्यों होता है यूटीआई

यूटीआई होने का मुख्य कारण है पेशाब लगने पर भी देर तक शौचालय न जाना। शौच के बाद सही तरीके से सफाई न करना। निजी अंगों की साफ-सफाई पर ध्यान न देने से भी कई बार यह संक्रम होता है। किडनी स्टोन और डायबिटीज के मरीजों भी यूटीआई होने की आशंका रहती है।

लक्षण

● पेशाब करते समय जलन महसूस होन ● पेट के निचले हिस्से में दबाव। ● बार-बार पेश लगना। ● पेशाब का रंग गाढ़ा होना। ● पेट और क में दर्द, भारीपन सा महसूस करना। ● पेशाब से दुर्ग और खून आना। ● बुखार और कंपकंपी होन ● उल्टी होना। ● थकान महसूस करना।

जांच

आप यूटीआई संक्रमण से प्रभावित हैं या न इसकी पुष्टि करने के लिए डॉक्टर यूरीन कल्चर अ अल्ट्रासाउंड के जरिए इस समस्या का पता लगाते जांच में पुष्टि होने पर एंटी बायोटिक दवाइयों से इ दूर किया जाता है।

ऐसे बचें

दिन भर में 10 गिलास पानी अवश्य पीये अधिक मात्रा में तरल पदार्थों का सेवन करें और पेश देर तक रोक कर न रखें। यूटीआई होने पर सार्वजनि शौचालयों के इस्तेमाल के वक्त सावधानी बरतें। शौ करने से पहले व बाद में फ्लश का इस्तेमाल करें। प पर भी टॉयलेट की साफ-सफाई का ध्यान रखे यूटीआई होने पर पर्याप्त चिकित्सकीय देखभाल अ दवाइयों का सेवन समय पर करें। कोर्स पूरा कि बिना दवाईयों का सेवन बंद न करें। दोबारा होने प डॉक्टर से संपर्क करें।

साभार-अमर उजाल

वर्ष : 83 [अक्टूबर-2015] अंक : 3

राजस्थान तथा बिहार सरकार द्वारा स्वीकृत

✳ साधन के नियम ✳

1. गूढ़ तथा अनुभवी गुप्त रहस्यों को सरल भाषा द्वारा जनता तक पहुँचाना तथा सदाचार की शिक्षा देना ''साधन'' का मुख्य उद्देश्य है।
2. साधन प्रत्येक मास की 20-21 तारीख को प्रकाशित होता है। जिन ग्राहकों को पत्रिका अगले माह की 20 तारीख तक न मिले, उन्हें डाकखाने तथा कार्यालय से सम्पर्क करना उचित है। अंक न मिलने पर एक माह के अन्दर सूचित करने पर अंक दोबारा भेज दिया जायेगा।
3. साधन में आध्यात्मिक, सामाजिक तथा शारीरिक उन्नति के लेख ही छापे जायेंगे। राजनैतिक तथा अश्लील लेख भेजने का कोई भी सज्जन कष्ट न करें।
4. लेखों को घटाने-बढ़ाने और छापने, न छापने का अधिकार सम्पादक का रहेगा, परन्तु लेख प्रकाशित नहीं होने पर सम्पादक उत्तरदायी नहीं होगा। लेख सरल भाषा में कागज के एक ओर ही स्वच्छ लिखे हों।
5. ग्राहकों को पता व ग्राहक नम्बर साफ़-साफ़ लिखना चाहिए। उत्तर के लिए जबाबी कार्ड भेजना आवश्यक है।
6. साधन का वार्षिक शुल्क रुपये 150/- है। एक प्रति का शुल्क रुपये 16/- है। केवल विशेषांक का शुल्क रुपये 20/- है। भारतवर्ष से बाहर दूसरे देशों में रहने वालों के लिए साधन का वार्षिक शुल्क रुपये 1400/- है। एक वर्ष से कम के ग्राहक नहीं बनाये जायेंगे।
7. दस वर्षीय अवधि की सदस्यता शुल्क रुपये 1350/- है और बीस वर्षीय अवधि की सदस्यता शुल्क रुपये 2500/- है।
8. साधन का वार्षिक शुल्क साधारण मनीआर्डर, ई. एम. ओ., डिमाण्ड ड्राफ्ट अथवा चैक (जो मथुरा में देय हो) द्वारा भेज सकते हैं, जो ''साधन हिन्दी मन्थली'' के नाम 813, डैम्पियर नगर, मथुरा-281001 को भेजा जाये।
9. सत्संग साहित्य जो आप मंगाना चाहते हैं उसका कुल मूल्य एवं डाकखर्च कार्यालय से पता कर मनीआर्डर, ई.एम.ओ., डिमाण्ड ड्राफ्ट अथवा चैक द्वारा भेजकर मंगाया जा सकता है।

Licence To Post without Prepayment Licence No. - AGRA/WPP-01/2015-2017
"Registered" Postal Regd. No. MTR / 28 /15-17 R. N.I. No. - 2358 / 57
Date of Publication : 8th to 15th of Every Month

साधन

ॐ

मथुरा

प्रबन्ध सम्पादक : आलोक कुमार, साधन हिन्दी मन्थली, मथुरा
प्रकाशक : आलोक कुमार, साधन हिन्दी मन्थली, डैम्पियर नगर, मथुरा
मुद्रक : आलोक कुमार, साधन प्रेस, डैम्पियर नगर, मथुरा

E-mail: sadhanhindimonthly@gmail.com, sadhanhindimonthly@yahoo.co.in
Website: www.sadhan.in, www.facebook.com/sadhan.ramashram
Ph.: 0565-3290790, Mob.: 09319680800